पंजीयन क्रमांक : 70269/98
आई एस एस एन : 0972-169X

डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल–एस डब्ल्यू–1/4082/15-17
डाक से भेजने की तिथियां : 26-27 अग्रिम माह की
प्रकाशन तिथि : अग्रिम माह की 24 तारीख

विज्ञान प्रसार

ड्रीम 2047

अक्टूबर 2015 | खण्ड 18 | अंक 1 | 5.00 रुपए

अंतर्राष्ट्रीय प्रकाश वर्ष 2015

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम: जन-जन के राष्ट्रपति

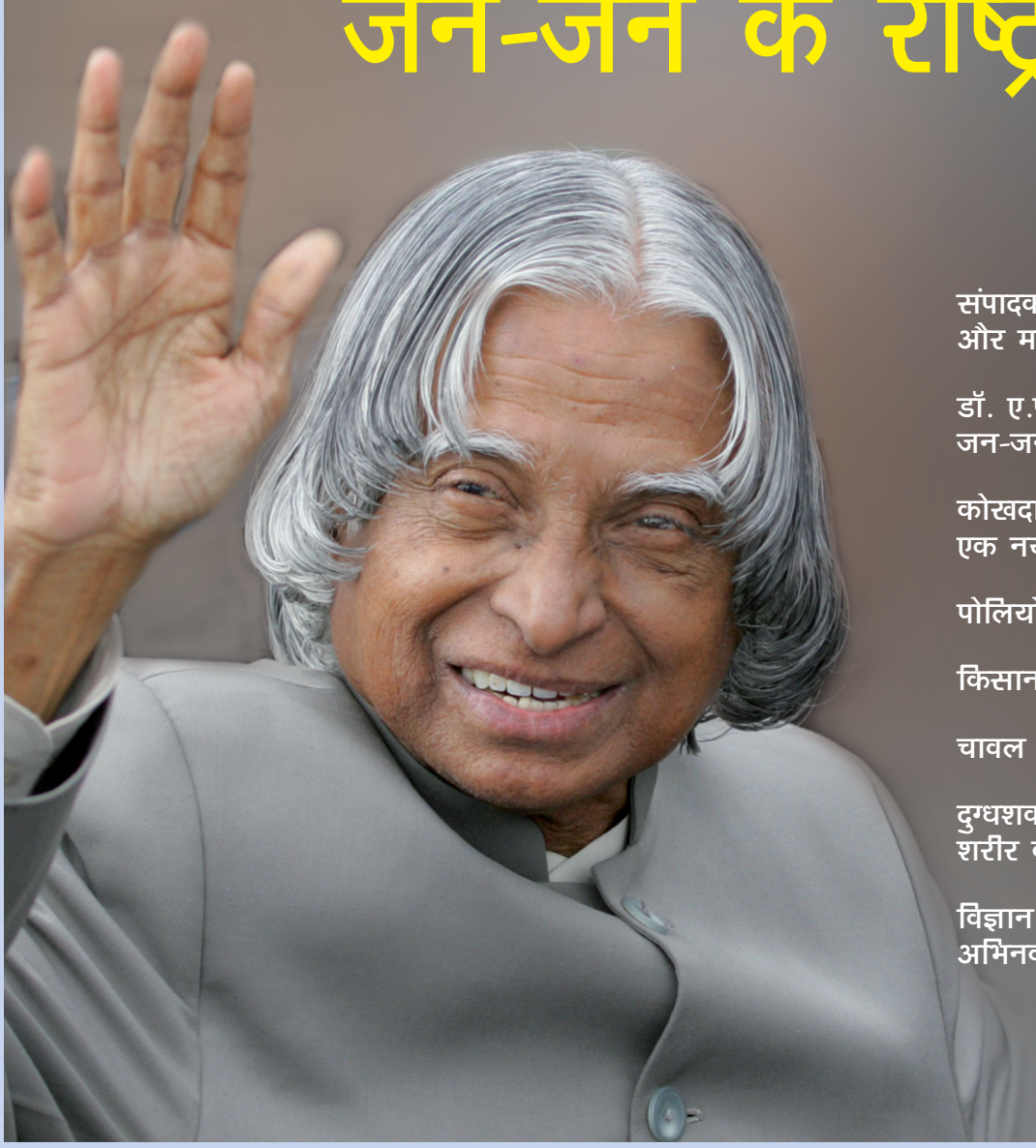

संपादकीय: नागरिक विज्ञान और मानवीय मूल्य 2

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम: जन-जन के राष्ट्रपति 3

कोखदान: मातृत्व का एक नया आयाम 6

पोलियो मुक्त भारत 8

किसानों के सूक्ष्मजीव मित्र 9

चावल की आर्गेनिक खेती 11

दुग्धशर्करा असह्यता: शरीर की दुग्ध पाचन अक्षमता 13

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां 16

... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ...

विद्यार्थियों के साथ जैवप्रौद्योगिकी के संबंध में आधारभूत स्तरीय विमर्श

डॉ. आर. गोपीचन्द्रन

विज्ञान रेल की तैयारियों में विज्ञान प्रसार को सहायता का अवसर प्रदान करने के लिए जैवप्रौद्योगिकी विभाग (डी.बी.टी.) तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग को हार्दिक धन्यवाद। इस संबंध में हमने देश के विभिन्न भागों के प्रमुख वैज्ञानिकों से संबंध स्थापित करके उनसे संचार सामग्री एकत्र की, उसका संपादन किया तथा उनकी स्वीकृति लेकर इसे प्रस्तुति के लिए तैयार किया। जिन वैज्ञानिकों ने सामग्री संकलन में योगदान दिया उनके उत्साह, स्पष्टता और उद्देश्य के प्रति दृढ़ता का अनुभव करना सचमुच प्रेरणादायक था। इस कार्यकलाप से देश में चल रही उन महत्वपूर्ण नई शुरुआतों के बारे में पहले की तुलना में बहुत अधिक विस्तार से जानकारी प्राप्त करने में भी सहायता मिली जो जैवप्रौद्योगिकी के संबंध में बड़ी संख्या में विद्यार्थियों से जुड़ते हैं।

उपरोल्लिखित विभागों द्वारा देश भर के विद्यार्थियों से औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों तक पहुंच बनाने के मानवशक्य प्रयासों को ध्यान में लाना महत्वपूर्ण है। डी.बी.टी. (DBT) का इंसपायर (INSPIRE) (विज्ञान खोज के लिए प्रेरित अनुसंधान में नवाचार) कार्यक्रम इस पहल के इरादे और बुद्धिगम्य परिणामों को निरूपित करता है। डी.बी.टी. जैविक विज्ञानों में स्नातक स्तरीय शिक्षा को शक्ति प्रदान करना चाहता है जिसमें उसका विशेष 'फोकस' हमारे देश के उत्तर-पूर्वी भाग पर है। जैवप्रौद्योगिकी के जैव-संसाधनों के साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंतरापृष्ठों में से एक है गुणात्मक और परिमाणात्मक विविधता और उससे संबद्ध पारिस्थितिकीय गतिकी को समझना। यह आशा है कि उनकी उपलब्धता, वितरण, पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण तथा व्यष्टि एवं समष्टि स्तरीय संबद्ध निष्कर्षों संबंधी आनुभविक प्रमाण, संरक्षण उपायों को बल प्रदान करेंगे। इससे, संबद्ध लक्ष्य प्राप्ति हेतु स्थानिक रूप से प्रासंगिक ज्ञान तंत्रों के माध्यम से जन सहयोग की आदर्श स्थिति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

विज्ञान भारती का विद्यार्थी विज्ञान मंथन इसका एक अन्य प्रारूपिक उदाहरण है।[1] इसके द्वारा हजारों विद्यार्थियों को प्रतियोगिता के माध्यम से अपने ज्ञान और अनुप्रयोजक योग्यताओं को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। उन्हें राष्ट्रीय कार्यक्रमों में विशेषज्ञों से मिलने और कुछ क्रियाकलापों को खुद से करके सीखने का आनंद भी प्राप्त होता है। यह एक उपरोगामी अभिगम है जो जिला/राज्य स्तर से शुरू होकर राष्ट्रीय स्तर पर संपन्न होता है। वर्ष 2015–2016 के लिए प्रतियोगिता की घोषणा की जा चुकी है।

भारत सरकार का जैवप्रौद्योगिकी विभाग (डी.बी.टी.) अपने डी.एन.ए. (DNA) क्लबों के माध्यम से बड़ी संख्या में गतिविधियां चलाता है या उन्हें चलाने में सहायता प्रदान करता है। इन क्लबों के माध्यम से साल भर चलने वाली गतिविधियों को देश भर में चल रहे विद्यालयों और क्षेत्रीय संसाधन एजेंसियों के माध्यम से औपचारिक शिक्षण तंत्रों के साथ मिलाया जाता।[2] भारत की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी इस प्रक्रम में एक प्रमुख सुविधा प्रदायक है।[3] आत्री[4] (ATREE[4]) के शिक्षा कार्यक्रमों का उद्देश्य संरक्षण संबंधी नैतिक मूल्यों को पुष्ट करना और इसके लिए आवश्यक उपयुक्त कौशल प्रदान करता है। यह जानना रोचक होगा कि मिजोरम में 'स्टेट बायोटेक हब'[5] एवं डी.बी.टी. द्वारा अर्थ-पोषित बायो इन्फोर्मेटिक्स इन्फ्रास्ट्रक्चर फैसिलिटी (BIF), विद्यार्थियों, किसानों और जीवन के सभी क्षेत्रों के नागरिकों के लिए शिक्षा, अनुसंधान और ज्ञान के हस्तांतरण को प्रौन्नत करते हैं।

संदर्भ:

1- http://vibhaindia.org/wp-content/uploads/2015/08/vvm-brochure-final.pdf
2- http://dnaclubs.nic.in/&http://www.isaaa.org/kc/cropbiotechupdate/article/default.asp?ID=2552
3. http://www.nasi.org.in/DNA%20Club.htm
4. http://www.atree.org/academy/conservation_education/dna_club
5. http://www.mzu.edu.in/index.php/facilities/dbt-state-biotech-hub-bioinformatics-centre

ई–मेल: r.gopichandran@vigyanprasar.gov.in

(अनुवादक: रामशरण दास) ■

संपादक : आर. गोपीचन्द्रन
संयुक्त संपादक : रिन्टू नाथ
प्रॉडक्शन : मनीष मोहन गोरे एवं प्रदीप कुमार
भाषा संपादन : रघुबर दत्त रिखाड़ी
पत्र व्यवहार का पता : विज्ञान प्रसार, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016
दूरभाष : 011-26967532; फैक्स : 0120-2404437
ई-मेल : dream@vigyanprasar.gov.in
वेबसाइट : http://www.vigyanprasar.gov.in

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदाई नहीं है।

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं बशर्ते वे पत्र-पत्रिकाएं निःशुल्क वितरित की जा रही हों जिनमें पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है।

विज्ञान प्रसार के लिए मनीष मोहन गोरे द्वारा सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, प्रा. लि., ओखला औद्योगिकी क्षेत्र, फेस-II, नई दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-26388830-32

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम: जन-जन के राष्ट्रपति

डॉ. अनूप कुमार दास
ई-मेल: anupdas2072@gmail.com

भारत के 11वें राष्ट्रपति भारत रत्न डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (1931-2015) एक सर्वश्रेष्ठ प्रौद्योगिकीविद् थे, जिन्होंने स्वदेशी प्रौद्योगिकियों के द्वारा देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कई उच्च प्रौद्योगिकी अभियानों का नेतृत्व किया। उनकी कार्यप्रणाली इतनी सामान्य थी कि विकसित देशों से उच्च-प्रौद्योगिकी खरीदने के बजाए किफ़ायती देशी साधनों का विकास हो सका।

डॉ. अवुल पाकिर जैनुलब्दीन अब्दुल कलाम का जन्म 15 अक्टूबर 1931 को तमिलनाडु राज्य (तत्कालीन मद्रास रियासत) के रामेश्वरम में एक तमिल मुस्लिम परिवार में हुआ। उनके पिता जैनुलब्दीन एक मछुवारे और एक स्थानीय मस्जिद में अंशकालीन इमाम थे और उनकी माता अशिअम्मा एक समझदार गृहिणी थीं। उनके पिता के स्थानीय हिंदू पुजारियों और इसाई पादरियों से अच्छे संबंध थे जिनसे कलाम ने आध्यात्मिक मूल्य एवं सिद्धांत ग्रहण किए। कलाम अपने पिता के स्वभाव को याद करते हुए कहते थे कि "मेरे पिताजी जैनुलब्दीन ने कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी, लेकिन वह एक अत्यधिक बुद्धिमान और उदार व्यक्ति थे।"

कलाम ने अपनी स्कूली शिक्षा रामनाथपुरम श्वार्ट्ज हाई स्कूल से प्राप्त की, जहां उन्होंने गणित में विशेष रुचि के साथ एक परिश्रमी विद्यार्थी होने की प्रतिभा प्रदर्शित की। इसके पश्चात् उन्होंने तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में सेंट जोसेफ़ कॉलेज से स्नातक में भौतिकी का अध्ययन करते हुए सन् 1954 में अपनी प्रथम उपाधि प्राप्त की। उस समय यह कॉलेज मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था। बी.एससी. करने के पश्चात् उन्होंने मद्रास इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी (तमिलनाडु) में वैमानिकी इंजीनियरिंग के एक डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। उन्होंने सन् 1958 में इंजीनियरिंग की शिक्षा पूर्ण की। उनकी प्राथमिकता यह थी कि इंजीनियरिंग शिक्षा के तुरंत बाद वह लड़ाकू वायुयानों के पायलट के रूप में भारतीय वायु सेना में कार्य ग्रहण करें, लेकिन दुर्भाग्यवश वह इससे चूक गए। इसके बजाए उन्होंने 1958 में बैंगलोर में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के वैमानिकी विकास प्रतिष्ठान में एक कनिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यग्रहण किया, जहां वह भारतीय वायु सेना के लिए लड़ाकू वायुयानों के अनुसंधान एवं विकास में कार्यरत रहे।

सन् 1963 में उन्हें भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (INCOSPAR) में रॉकेट इंजीनियर के पद पर कार्यग्रहण के लिए चुना गया। असल में INCOSPAR प्रोफेसर विक्रम साराभाई के नेतृत्व वाले भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का ही पूर्व नाम था। इस समिति में कार्यग्रहण के बाद शीघ्र ही कलाम को यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका के नेशनल एरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) में साउंडिंग रॉकेट प्रक्षेपण

राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम नई दिल्ली में 25 जनवरी 2007 को 58वें गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर अभिभाषण देते हुए (सौजन्य: www.photodivision.gov.in)

तकनीकों पर छह माह की अवधि के एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए नामित किया गया। उन्होंने 1963 में नासा में एक उन्नत प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस दौरान उन्होंने लैंगली रिसर्च सेंटर, हैम्पटन (वर्जिनिया) और गोडार्ड स्पेस फ्लाइट सेंटर, ग्रीनबेल्ट (मेरीलैंड) सरीखे नासा के विभिन्न अनुसंधान एवं विकास केंद्रों में प्रायोगिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। नासा में प्राप्त उनका यह प्रशिक्षण वर्तमान में फल-फूल रहे भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के मुख्य वास्तुकारों में से एक के रूप में कार्य करने के दौरान बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। भारत के प्रथम स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण यान (एसएलवी-3) के विकास और प्रक्षेपण में उन्होंने एक नेतृत्वकर्ता के रूप में भूमिका निभाई। एसएलवी-3 के द्वारा ही जुलाई 1980 में रोहिणी आर.एस.-1 उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में उतारा गया था। भारत के लिए एसएलवी-3 एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी, क्योंकि इसके परिणामस्वरुप ही भारत विशिष्ट अंतरिक्ष क्लब में शामिल हो सका था। कलाम भाग्यशाली थे कि उन्हें प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिकों जैसे कि प्रो. विक्रम साराभाई, प्रो. एम. जी. के. मेनन, प्रो. सतीश धवन और प्रो. राजा रमन्ना से स्नेहमय परामर्श प्राप्त हुए। लगभग दो दशकों तक इसरो में अपनी सेवाएं देने के पश्चात् उन्होंने सन् 1983 में इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल्स डेवलपमेंट प्रोग्राम (आई.जी.एम.डी.पी.) का नेतृत्व करने के लिए पुनः डीआरडीओ में मुख्य कार्यकारी के पद पर कार्यग्रहण किया। सन् 1980 के दशक में उनके नेतृत्व में आई.जी.एम.डी.पी. ने जोखिमकारी प्रौद्योगिकियों में स्वदेशी क्षमता निर्माण के लिए अग्नि और पृथ्वी मिसाइलों का विकास और संचालन किया। आई.जी.एम.डी.पी. कार्यक्रम की सफलता के पश्चात् जुलाई 1992 से दिसंबर 1999 के बीच देश की सेवा हेतु कलाम को प्रधानमंत्री के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार और डीआरडीओ के सचिव के पद पर नियुक्त किया गया। तत्पश्चात् उन्होंने सन् 1998 में क्षेत्रीय स्थायित्व और शांति के लिए संतुलन स्थापित करने हेतु संचालित 'ऑपरेशन शक्ति' (पोखरण-2) परमाणु परीक्षण अभियान के मुख्य परियोजना समन्वयकों में से एक के रूप में अपनी सेवाएं दीं। इस परीक्षण ने संपूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया क्योंकि इससे भारत को एक परमाणु संपन्न देश की श्रेणी में गिना जाने लगा।

कलाम सिंगापुर में युवा नर्तकों के साथ (सौजन्य: www.photodivision.gov.in)

कलाम ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन 'प्रौद्योगिकी सूचना, पूर्वानुमान एवं मूल्यांकन परिषद' (TIFAC टाइफैक) के अध्यक्ष के पद पर अपनी सेवाएं दीं, जबकि कई पुस्तकों के सह-लेखक रहे प्रो. वाई. एस. राजन इसके कार्यकारी निदेशक थे। 1990 के दशक के दौरान "भारत की मुख्य क्षमता, प्राकृतिक संसाधन और प्रतिभावान श्रम-शक्ति के आधार पर

चिह्नित किए गए पांच कार्यक्षेत्रों के संयोजन से सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर को दुगुना करने और विकसित भारत का सपना सच करने के लिए एकीकृत कार्रवाई से राष्ट्र को एक विकसित देश में रूपांतरित करने" के उद्देश्य से टाइफैक भारत के लिए प्रौद्योगिकी परिकल्पना 2020 के अभ्यास में कार्यरत थी। ये चिह्नित क्षेत्र हैं:

- सन् 2020 तक खाद्य एवं कृषि उत्पादों को वर्तमान उत्पादन से दुगुना करने के लक्ष्य के साथ कृषि और खाद्य प्रसंस्करण कार्य। कृषि-खाद्य प्रसंस्करण उद्योग ग्रामीण लोगों में समृद्धि व खाद्य सुरक्षा लाते हुए आर्थिक विकास की गति बढ़ाएंगे;
- सौर खेती सहित संपूर्ण देश में भरोसेमंद एवं गुणवत्तापूर्ण विद्युत् शक्ति का ढांचा, ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएं प्रदान करना और नदियों को आपस में जोड़ना;
- शिक्षा और स्वास्थ्य देखभालः अनपढ़ता का उन्मूलन करना और सभी के लिए सामाजिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करना;
- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकीः यह हमारी मुख्य क्षमताओं में से एक है और इससे धन-संपदा पैदा की जा सकती है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को दूर-शिक्षा, दूर-चिकित्सा और ई-शासन के लिए, सुदूर क्षेत्रों में शिक्षा को बढ़ावा देने, स्वास्थ्य देखभाल और शासन में पारदर्शिता लाने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है; और
- जोखिमकारी प्रौद्योगिकियों और सामरिक महत्व के उद्योगों के क्षेत्र में परमाणु प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी और रक्षा प्रौद्योगिकी ने वृद्धि दर्ज की है।

'इंडिया 2020: अ विज़न फॉर दी न्यू मिलेनियम' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक टाइफैक द्वारा प्रकाशित दस्तावेजों "टेक्नोलॉजी विज़न 2020" की श्रृंखला का ही एक परिष्कृत रूप था। कलाम और राजन ने इस पुस्तक का मार्मिक प्रस्तुतिकरण कुछ इस प्रकार लिखाः

डॉ. कलाम द्वारा दिए गए एक भाषण के पश्चात् एक दस वर्षीय लड़की उनके पास हस्ताक्षर लेने आई। उन्होंने लड़की से पूछा, 'तुम्हारी क्या कामना है?' उसने बिना हिचकिचाहट के जवाब दिया, 'मैं एक विकसित भारत में रहना चाहती हूं।' यह पुस्तक उस लड़की और उन करोड़ों भारतीयों को समर्पित है जो उस लड़की जैसी आकांक्षाएं रखते हैं।

कलाम कई कारणों से 'आमजन के राष्ट्रपति' और 'मिसाइल मैन ऑफ़ इंडिया' के नाम से लोकप्रिय थे। प्रसिद्ध पत्रकार मार्क टली ने एक शोक संदेश में लिखाः "वह 'पीपल्ज़ प्रेसिडेंट' के नाम से प्रसिद्ध

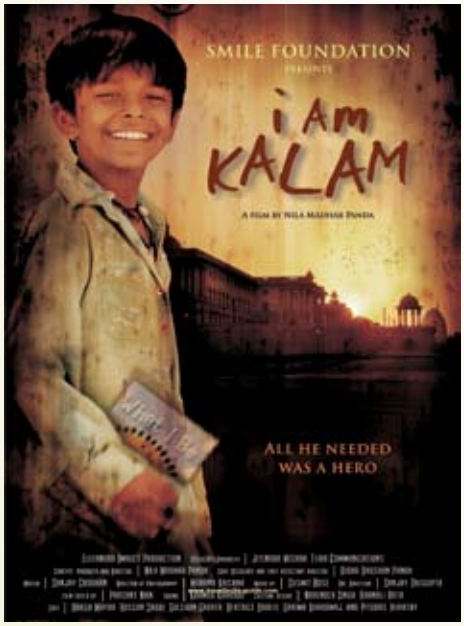

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के जीवन से प्रेरित फिल्म "आई एम कलाम" का एक पोस्टर

हुए क्योंकि वह आम जनता को नई दिल्ली में स्थित महल (ब्रिटिश वास्तुकार सर एडविन लुटीएंस द्वारा वाइसराय के लिए निर्मित) में बुलाते और उनका स्वागत करते, और यात्रा के दौरान भी लोगों से मिलते थे। टली ने कलाम को भारत के सर्वाधिक सफलतम प्रौद्योगिकी कार्यक्रम जैसे कि एस.एल.वी.-3 और स्वदेशी नियंत्रित मिसाइलों के विकास एवं प्रक्षेपण, जिससे वह मिसाइल मैन ऑफ़ इंडिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए, में एक निर्णायक भूमिका निभाने वाले व्यक्ति का तगमा दिया है। आर.एस. द्विवेदी द्वारा लिखित एक शोधपत्र "विज़नरी लीडरशिपः अ

कलाम दृष्टिबाधित विद्यार्थियों के लिए उच्चारण एप्लेट 'वर्चुअल विज़न' सॉफ्टवेयर के विमोचन के दौरान विद्यार्थियों की सहायता करते हुए (सौजन्यः www.photodivision.gov.in)

सर्वे लिटरेचर एंड केस स्टडी ऑफ़ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम एट डी.आर.डी.एल." (*दी जर्नल ऑफ़ बिज़नस पर्सपेक्टिव*, 10(3), 11-21, 2006) में किए वर्णन के अनुसार उनकी नेतृत्व शैली बहुत अनोखी और अनुकरणीय थी।

अपने राष्ट्रपति काल (2002-2007) के दौरान कलाम ने ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएं प्रदान करने (PURA) सहित सतत विकास और जन-सशक्तिकरण के लिए कई नवाचारी विचार प्रस्तुत किए, जो राष्ट्रीय एवं स्थानीय सरकारों द्वारा लागू किए जाने हेतु थे। यह विचार (PURA) ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 2010 में 'प्रोविज़न ऑफ़ अर्बन एमेनिटीज इन रूरल एरियाज' शीर्षक की एक केंद्रीय योजना बन गई, और इसे 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान एक सार्वजनिक-निजी भागेदारी (PPP) फ्रेमवर्क के अधीन प्रारंभिक आधार पर कार्यान्वित किया गया।

देश की वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय क्षमताओं को प्राप्त करने में अपनी नेतृत्वकर्ता भूमिका के लिए उन्हें सन् 1997 में भारत सरकार द्वारा सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा गया। इससे पूर्व उन्हें सन् 1981 में पद्म भूषण और सन् 1990 में पद्म विभूषण सरीखे दो अन्य महत्त्वपूर्ण नागरिक सम्मानों से नवाजा गया। उन्हें राष्ट्रीय अकादमियों जैसे कि इंडियन नेशनल अकैडमी ऑफ़ इंजीनियरिंग (INAE), इंडियन अकैडमी ऑफ़ साइंसेज़, बैंगलोर (IAS) और नेशनल अकैडमी ऑफ़ साइंसेज़ ऑफ़ इंडिया (NASI) के अध्येता, और इंस्टिट्यूशन ऑफ़ इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेलीकम्यूनिकेशन इंजीनियरिंग (IETE) का मानद अध्येता चुना गया। उन्हें अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय जैसे भारतीय तथा एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी (यूके), कार्नेगी मेलन यूनिवर्सिटी (यूएसए), यूनिवर्सिटी ऑफ़ वॉटरलू (कनाडा) और नान्यांग टेक्नोलॉजिकल यूनिवर्सिटी (सिंगापुर) जैसे विदेशी विश्वविद्यालयों से डॉक्टरेट की मानद उपाधि से सुशोभित किया गया। वह आजीवन अविवाहित रहे।

कलाम ने स्वयं को एक पारंगत लेखक सिद्ध किया। उन्होंने 20 से अधिक पुस्तकें लिखीं हैं, हालांकि पूर्व राष्ट्रपति के एक आधिकारिक वेबपेज (onabdulkalam-nic-in/books.html) पर उनके द्वारा लिखित 13 पुस्तकों की सूची दी गई है। उनकी रचनाओं को तीन विधाओं अर्थात आत्मकथा, भविष्यवादी अथवा कल्पनाशील, और प्रेरणात्मक श्रेणियों में बांटा जा सकता है। उन्होंने अरुण तिवारी के साथ संयुक्त रूप से *विंग्स ऑफ़ फायरः एन ऑटोबायोग्राफी* (1999), और *टर्निंग पॉइंट्सः अ जर्नी थ्रू चैलेंजज़* (2012) आत्मकथाएं लिखीं। उनकी प्रेरणादायक पुस्तकों के विषय उनके सार्वजनिक व्याख्यानों से मिलते-जुलते हैं, जिन्हें वह स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और भारत के युवा नागरिकों के मन में निकट भविष्य में एक विकसित राष्ट्र के सपने को जगाने के लिए प्रस्तुत किया करते थे।

पाठकों द्वारा उनकी कई रचनाओं की अत्यधिक समीक्षा की गई है। पाठकों और पुस्तक-प्रेमियों को प्रकाशित पुस्तकों की रेटिंग और समीक्षा करने की सुविधा उपलब्ध करवाने वाली वेबसाइट गुडरीड्स डॉट कॉम (www.goodreads.com) पर पाठकों की पसंद पर आधारित उच्चकोटि की पांच पुस्तकें हैं: *विंग्स ऑफ़ फायर: एन ऑटोबायोग्राफी* (1999), *इग्नाइटेड माइंड्स: अनलीशिंग दी पॉवर विदिन इंडिया* (2002), *टर्निंग पॉइंट्स: अ जर्नी थ्रू चैलेंजिज़* (2012), *इंडिया 2020: अ विज़न फॉर दी न्यू मिलेनियम* वाई.एस. राजन के साथ संयुक्त रूप से लिखित (1999), और *माय जर्नी: ट्रांसफॉर्मिंग ड्रीम्स इनटू एक्शंस* (2013)।

गूगल स्कॉलर सर्च इंजिन के अनुसार सर्वाधिक उद्धरण के आधार पर उच्च श्रेणी की पांच पुस्तकें हैं: *इंडिया 2020: अ विज़न फॉर दी न्यू मिलेनियम; इग्नाइटेड माइंडस: अनलीशिंग दी पॉवर विदिन इंडिया; विंग्स ऑफ़ फायर: एन ऑटोबायोग्राफी;* एस. पी सिंह के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित *टारगेट 3 बिलियन: इनोवेटिव सोल्यूशंस टुवर्ड्स सस्टेनेबल डेवलपमेंट* (2011); और ए.एस. पिल्लई के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित *एनविज़निंग एन एम्पॉवर्ड नेशन: टेक्नोलॉजी फॉर सोसाईटल ट्रांसफॉर्मेशन* (2004)।

उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त कलाम ने भारतीय युवाओं के लिए कुछ अन्य स्वप्नदर्शी और प्रेरक पुस्तकें, जिनके नाम हैं एस.पी. सिंह के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित *रीइग्नाइटेड: साइंटिफिक पाथवेज़ टू अ ब्राईटर फ्यूचर* (2015); वी. पोनराज के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित *अ मैनिफेस्टो फॉर चेंज: अ सीक्वल टू इंडिया 2020* (2014); वाई.एस. राजन के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित *दी साइंटिफिक इंडियन: अ ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी गाइड टू दी वर्ल्ड अराउंड अस* (2011); और वाई.एस. राजन के साथ संयुक्त रूप से प्रकाशित *मिशन इंडिया: अ विज़न फॉर इंडियन यूथ* (2005)।

नीला माधब पांडा द्वारा निर्देशित और स्माइल फाउंडेशन द्वारा निर्मित एक अत्यंत प्रशंसनीय फीचर फिल्म *आई एम कलाम* में अब्दुल कलाम के जीवन से प्रेरित एक बाल मजदूर अपने आरंभिक जीवन में सभी कठिनाइयों का सामना करते हुए एक शिक्षित नागरिक बनने का सपना संजोता है। *आई एम कलाम* का मूवी ट्रेलर शिक्षा के माध्यम से वंचित बच्चों को सशक्त करने में महारत हासिल करने का प्रयत्न है। इसकी दिल को छू लेने वाली अधिकांश पटकथा (http://vimeo.com/120668088 पर उपलब्ध) जबरदस्त कठिनाइयों के बावजूद मानव जोश बनाए रखने का गुणगान करती है। हर्ष मायर, जिन्होंने इस फिल्म में छोटू का मुख्य किरदार निभाया, को 2011 में सर्वश्रेष्ठ बाल कलाकार का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

विकसित भारत में रहने के इच्छुक और भारत को एक आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने की आकांक्षा रखने वाले भारतीय बच्चों, युवाओं और ज्ञान निर्माताओं द्वारा कलाम को हमेशा याद रखा जाएगा। उन्होंने अपने प्रसिद्ध प्रेरक वाक्यों के द्वारा कई युवाओं के मस्तिष्क प्रज्वलित किए। *इग्नाइटेड माइंड्स: अनलीशिंग दी पॉवर विदिन इंडिया* से लिया गया एक ऐसा ही उदहारण इस प्रकार है:

"ड्रीम, ड्रीम, ड्रीम
ड्रीम्स ट्रांसफॉर्म इनटू थॉट्स
एंड थॉट्स रिजल्ट इन एक्शन"

अर्थात *"सपने देखो, सपने देखो, सपने देखो*
क्योंकि सपने विचारों में रूपांतरित होते हैं
और विचार कार्रवाई को जन्म देते हैं।"

उनके द्वारा प्रायः कहा जाने वाला एक अन्य प्रेरक वाक्य है:

"स्वप्न वह नहीं होते हैं, जिसे
आप नींद में देखते हो,
बल्कि यह तो ऐसी घटना है, जो
आपको सोने नहीं देती है।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का काल-क्रमानुसार परिचय

1931	15 अक्टूबर को रामेश्वरम, तमिलनाडु (भारत) में जन्म हुआ। माताः अशिअम्मा; पिताः जैनुलब्दीन
1954	तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सैंट जोसफ कॉलेज से बीएससी (भौतिकी) की शिक्षा पूर्ण की।
1958	मद्रास प्रौद्योगिकी संस्थान (तमिलनाडु) से एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग में डिग्री पूर्ण की।
1958	रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन, बैंगलोर के वैमानिकी विकास प्रतिष्ठान में कनिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यग्रहण किया।
1963	1963 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (INCOSPAR), इसरो का पूर्व नाम, में रॉकेट इंजिनियर के पद पर कार्यग्रहण।
1963	नासा में एक उन्नत प्रशिक्षण कार्यक्रम में कार्यग्रहण किया और नासा के विभिन्न अनुसंधान एवं विकास केन्द्रों में प्रायोगिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।
1980	भारत के प्रथम स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण यान (एस.एल.वी.-3) के विकास और प्रक्षेपण में एक नेतृत्वकर्ता की भूमिका निभाई। एसएलवी-3 के द्वारा ही 18 जुलाई को रोहिणी आर.एस.-1 उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में उतारा गया था, और परिणामस्वरुप भारत विशिष्ट अंतरिक्ष क्लब में शामिल हो सका था।
1981	पद्म भूषण से सम्मानित
1983	डीआरडीओ के इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल्स डेवलपमेंट प्रोग्राम (आई.जी.एम.डी.पी.) के मुख्य कार्यकारी के पद पर कार्यग्रहण किया।
1990	पद्म विभूषण से सम्मानित
1992	प्रधानमंत्री के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार और डीआरडीओ के सचिव के पद पर नियुक्त किया गया। इन पदों पर उन्होंने 1999 तक अपनी सेवाएं दीं।
1997	भारत रत्न से सम्मानित
2002	भारत के राष्ट्रपति चुने गए और 2007 तक इस पद पर अपनी सेवाएं दीं।
2015	27 जुलाई को भारतीय प्रबंधन संस्थान, शिल्लोंग (मेघालय) में एक भाषण देते समय हृदय गति रुक जाने के कारण निधन।

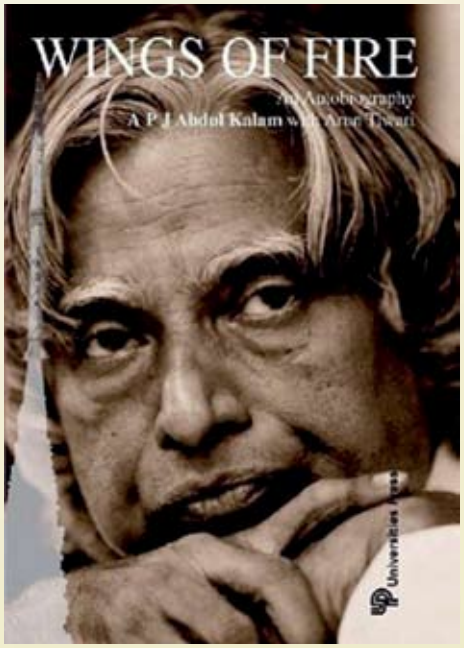

'विंग्स ऑफ़ फायर: एन ऑटोबायोग्राफी' का मुख पृष्ठ

डॉ. अनूप कुमार दास जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.एन.यू.), नई दिल्ली, भारत में सेंटर फॉर स्टडीज़ इन साइंस पालिसी से जुड़े हैं।

(अनुवादकः रूपेंद्र शर्मा) ■

कोख-दान: मातृत्व का एक नया आयाम

डॉ. एम.एस.एस. मूर्ति
ई-मेल: mssmurthyb104@gmail.com

हाल ही में, एक राष्ट्रीय दैनिक में एक रोचक समाचार छपा था, ''61 वर्षीय वृद्ध महिला ने अपने नाती को जन्म दिया।'' 61 वर्ष की आयु किसी महिला के गर्भवती होने की दृष्टि से बहुत अधिक है और कोई महिला अपने नाती को कैसे जन्म दे सकती है? यह 'कोख-दान मातृत्व' की महिमा है।

कोख-दान मातृत्व क्या होता है?

मानवों में गर्भधारण एक अत्यंत जटिल प्रक्रम है। स्त्री के जनन तंत्र में डिंबग्रंथि से विमुक्त डिंब फैलोपियाई नलिका में नीचे की ओर चलता है। रास्ते में यदि यह एक शुक्राणु कोशिका से मिल जाता है तो यह निषेचित हो जाता है। निषेचित डिंब फैलोपियाई नलिका में और नीचे उतर कर गर्भाशय में चला जाता है जहां यह सुरक्षित रूप से उसमें अंतः स्थापित हो जाता है। भ्रूण गर्भाशय में वृद्धि करता है और नौ महीने के बाद शिशु का जन्म होता है। जो डिंब को विमुक्त करती है उस डिंबग्रंथि अथवा फैलोपियाई नलिका में कोई समस्या होने पर स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती। इस तरह की स्थिति में परखनली निषेचन (आइ वी एफ) नामक प्रक्रम उन की सहायता करता है। इस प्रक्रिया में स्त्री रोग विशेषज्ञ एक अल्ट्रासाउंड के तहत लैपैरेस्कोप की सहायता से परिपक्व डिंबों को डिंबग्रंथि से निकाल कर शुक्राणु कोशिकाओं के साथ सम्मिश्रित करती है और उनको एक इन्क्युबेटर (ऊष्मायित्र) में नियंत्रित ताप और पर्यावरण में रखती है। लगभग 18 घंटे के ऊष्मायित्रीकरण के परिणामस्वरूप एक शुक्राणु कोशिका डिंब में प्रविष्ट हो जाता है और अपना जीनोम इसमें जमा कर देता है। इस प्रकार निषेचित डिंब में अगले 48 घंटे कोशिका विभाजन होता है जिससे मात्र आठ कोशिकाओं का एक सूक्ष्म भ्रूण निर्मित हो जाता है जिसे सूक्ष्मदर्शी द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। स्त्री रोग विशेषज्ञ इसे आसानी से उठा कर स्त्री के गर्भाशय (बच्चेदानी) में स्थानांतरित कर देती है। इसके पश्चात् भ्रूण सामान्य तरीके से प्राकृतिक परिवेश में शिशु रूप में विकसित होता है।

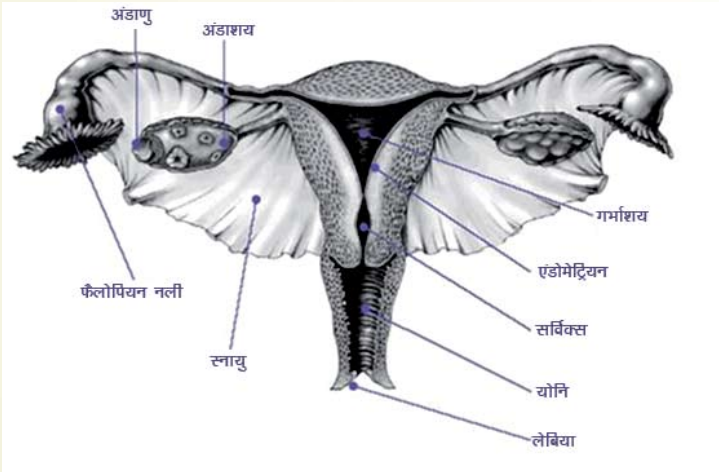

महिला प्रजनन प्रणाली

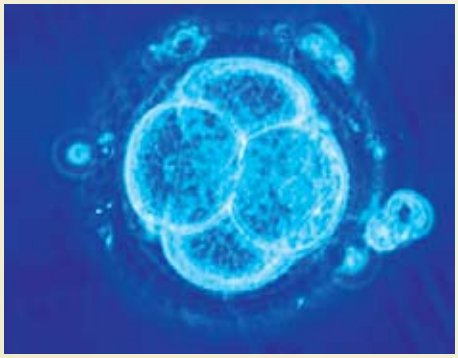

चार–कोशिका चरण में एक प्रारंभिक भ्रूण

दूसरी मां

यहां तक तो ठीक था। किंतु यदि गर्भाशय में, जिसे अगले नौ महीने भ्रूण के लिए, पोषण प्राप्त करना और उसे प्रदान करना है, कोई दोष हो तो इस प्रक्रिया से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होंगे। मायर-रोकिटैंश्की-कुस्टर सिंड्रोम नामक एक स्थिति होती है जिसमें रोगी स्त्री में डिंबग्रंथि तो सामान्य होती है किंतु वह जन्म से ही गर्भाशय के बिना या अर्द्धविकसित गर्भाशय युक्त होती है। इस सिंड्रोम के कारण आनुवांशिक हो सकते हैं, भ्रूण विकास के दौरान पर्यावरणीय कारक हो सकते हैं या फिर कुछ अन्य अज्ञात कारण हो सकते हैं। अनुमान यह है कि प्रत्येक 5000 में से एक लड़की इस दोष के साथ जन्म लेती है। फिर कुछ अन्य स्थितियां भी हैं जैसे कैंसर, हृदय रोग आदि जिनमें रोगी नौ मास गर्भ वहन योग्य नहीं होती है। इन सब स्थितियों में साधारण आइ वी एफ पर्याप्त नहीं होगा।

अभी हाल ही तक इस प्रकार के सब दंपत्तियों के लिए एकमात्र हल किसी बच्चे को गोद ले लेना था। तथापि, अनेक दंपत्तियों की इच्छा जैविक रूप से अपना स्वयं का बच्चा प्राप्त करने की हो सकती है। इस तरह की स्थिति में आइ वी एफ का एक विस्तृत रूप उपयोग में लाया जा सकता है, जिसमें एक दूसरी स्त्री – एक कोख-दायी मां – जो अपना गर्भाशय प्रदान करती है, शामिल होती है।

कोख-दान किस प्रकार सर-अंजाम दिया जाता है?

यदि जैविक माता को डिंब उत्पादन में कोई समस्या नहीं है तो कोख-दान सरल और सहज हो जाता है।

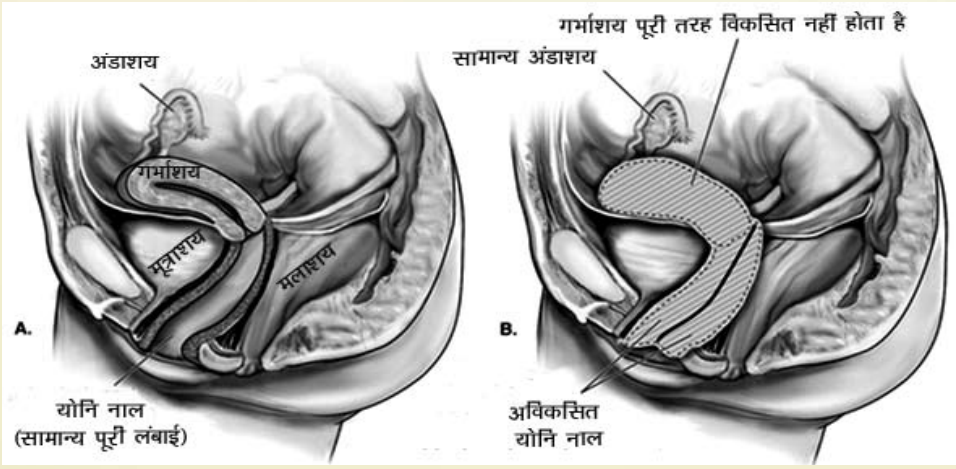

मायर-रोकिटैंश्की-कुस्टर सिंड्रोम रोगी में अविकसित गर्भाशय

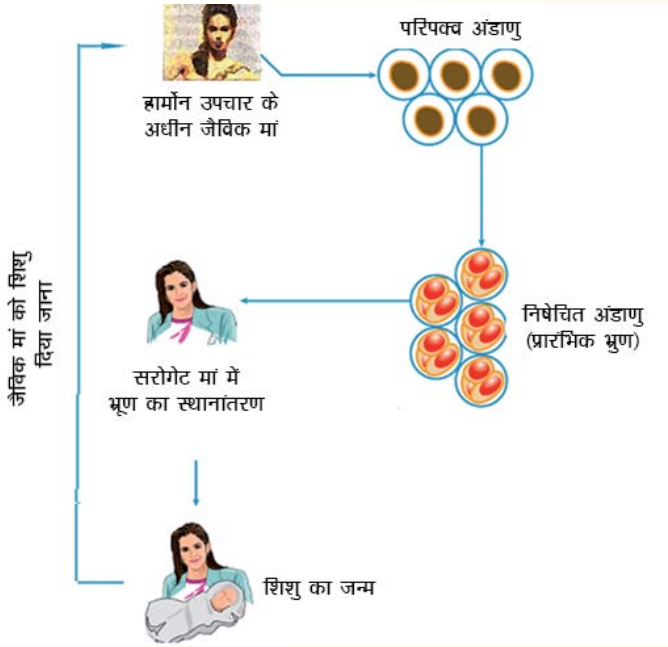

विभिन्न चरणों में कोखदायी मॉ

सामान्यतः स्त्री एक ऋतुकाल में एक डिंब विमुक्त करती है। किंतु मातृत्व दान प्रक्रम में जैविक माता को हॉर्मोन उपचार पर रखा जाता है जिससे एक से अधिक डिंब परिपक्व हो जाते हैं। स्त्री रोग विशेषज्ञ अल्ट्रासाउंड प्रक्रिया द्वारा परिपक्व डिंबों की पहचान करती है और लैपरोस्कोपी द्वारा उन्हें चुन कर निकालती है और एक पैट्री डिश में पति की शुक्राणु कोशिकाओं के साथ मिश्रित करके निषेचन और आदि-भ्रूण निर्माण के लिए आगे कोशिका विभाजन कराती है।

जिस दौरान जैविक-माता को अधिक डिंब विमुक्ति हेतु हॉर्मोन उपचार पर रखा जाता है उसी दौरान कोखदायी मां को भी हॉर्मोन उपचार दिया जाता है। ऐसा उसके मासिक-काल को जैविक माता के मासिक काल के तुल्य, और उसके गर्भाशय को भ्रूण ग्रहण करने योग्य बनाने के लिए किया जाता है। इस उपचार के अंत में भ्रूण को सावधानीपूर्वक पैट्री डिश से उठाया जाता है और योनिमार्ग से कोखदायी मां के गर्भ में स्थानांतरित कर दिया जाता है। गर्भ सुनिश्चित करने के लिए स्त्री रोग विशेषज्ञ आमतौर पर एक से अधिक भ्रूण स्थानांतरित करती है। 15 दिन पश्चात् कुछ रक्त परीक्षण करके गर्भ ठहरने की पुष्टि की जा सकती है। इसके बाद सब कुछ स्वाभाविक हो जाता है। जब बच्चे का जन्म होता है तो कोखदायी मां को इसे जैविक माता-पिता को देना पड़ता है। उसका बच्चे पर कोई अधिकार नहीं होता। जैविक अभिभावकों के नाम ही बच्चे के जन्म प्रमाण-पत्र में अभिलिखित किए जाते हैं। यहां पर उल्लेखनीय बात यह है कि कोखदायी मां और बच्चे में कोई जैविक संबंध नहीं होता है। वह मात्र एक जीवंत ऊष्मायित्र होती है।

कुछ रोचक उदाहरण

आजकल कोखदान लोकप्रिय होता जा रहा है जिसके कारण कुछ रोचक मामले सामने आ रहे हैं। लेख के प्रारंभ में उल्लिखित प्रकरण में 27 वर्षीय सीतालक्ष्मी को अपने पहले असफल गर्भ के दौरान कुछ समस्याएं पैदा हो गईं जिनके कारण जीवन बचाने के लिए शल्य चिकित्सा करके उसका गर्भाशय निकालना पड़ा। इससे गोद में अपना बच्चा खिलाने की उसकी आशा चकनाचूर हो गई। सहायता उसकी 61 वर्षीय माता के रूप में सामने आई जिन्होंने कोखदायी मां बनने की स्वीकृति दी। सीतालक्ष्मी के डिंब उसके पति के शुक्राणुओं से निषेचित करवाए गए और भ्रूण को उसकी माता के गर्भ में स्थानांतरित कर दिया गया। नौ महीने बाद नानी ने अपने नाती को जन्म दिया।

इसी तरह की कहानी सूरत की शोभा चावड़ा (47) और उसकी बेटी भविका (26) की है। भविका का विवाह सौरभ से हुआ था। यह एक प्रेम विवाह था। दंपत्ति जानते थे कि भविका प्राकृतिक रूप से मां नहीं बन सकती क्योंकि वह गर्भाशय विहीन जन्मी थी। उन्होंने बच्चा गोद लेने पर विचार किया, कोख-दान मातृत्त्व भी उनके दिमाग में था। लेकिन यह बहुत खर्चीला था। तब भविका की माता ने स्वयं को कोखदायी मां बनने के लिए प्रस्तुत किया। मां शोभना का कहना है, ''यह सबसे बड़ी भेंट है जो मैं अपनी बेटी को दे सकती हूं।'' भावनाओं से परिपूर्ण भविका का कहना है, ''मैं क्या कहूं? मेरी मां ने मेरे लिए जो किया है उसको व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।''

कोख-दान मातृत्त्व संबंधी इस तरह के अनेक रोचक उदाहरण हैं।

किराए की कोख

कोखदायी मां दो तरह की हो सकती है: (1) संबंधी या निकट मित्र, तथा (2) व्यावसायिक कोख-दान, जहां महिला किराए पर अपनी कोख प्रदान करती है। यह भारत सहित कई देशों में वैध है। कोखदायी मां को उसकी सेवा के लिए फीस दी जाती है जो चार लाख रूपए तक हो सकती है। अतः पतियों द्वारा छोड़ी गई व्यथित महिलाएं, युवा विधवाएं, निर्धन गृहणियां आदि जिन्हें घर चलाने के लिए या बच्चों की शिक्षा आदि के लिए आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है प्रायः स्वेच्छा से कोखदायी मां बनने के लिए तैयार हो जाती हैं।

भारत कम खर्चीले और अच्छे चिकित्सकीय इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए ख्यात है। इसलिए, कोखदायी मातृत्त्व के माध्यम से अपना बच्चा प्राप्त करने के लिए अनेक विदेशी दंपत्ति भी यहां आते हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, बैंगलुरु जैसे महानगरों के अतिरिक्त अहमदाबाद, भोपाल, आनन्द, सूरत जैसे छोटे शहरों में भी अनके आइ वी एफ चिकित्सालय हैं जो यह सेवा प्रदान करते हैं। एक आकलन के अनुसार, देश में लगभग 3000 आइ वी एफ चिकित्सालय हैं जो 30,000 करोड़ रुपए से अधिक का व्यवसाय करते हैं।

कोख-दान मातृत्त्व की पहुंच परिचित व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं हैं। देश भर में जैसे ब्लड-बैंक है ठीक वैसे ही शुक्राणु बैंक और डिंब बैंक भी हैं, जहां अधिशीतलन अवस्थाओं में स्वस्थ शुक्राणु कोशिकाएं और डिंब संरक्षित किए जाते हैं। यदि किसी महिला को डिंब उत्पन्न करने में भी समस्या है तब डिंब-बैंक से डिंब प्राप्त किए जा सकते हैं उनको पति के शुक्राणुओं से निषेचित कराया जा सकता है और भ्रूण को कोखदायी मां के गर्भाशय में स्थानांतरित किया जा सकता है। इसी प्रकार, यदि पति अच्छी गुणवत्ता के शुक्राणु उत्पन्न करने में असमर्थ है तो पत्नी के डिंब को निषेचित करने के लिए उन्हें शुक्राणु बैंक से प्राप्त किया जा सकता है। इन प्रकरणों में बच्चा जैविक रूप से माता-पिता में से किसी एक से संबंधित होगा। किंतु जैविक अभिभावकों को दाता का नाम, पता तथा अन्य जानकारी प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा।

आनंद गुजरात के एक क्लीनिक में बच्चे और कोखदायी मां के साथ अमेरिकी दंपत्ति

शेष पृष्ठ 10 पर

पोलियो मुक्त भारत

डॉ. हेमलता पंत
E-mail: pant_hemlata@yahoo.co.in

पोलियो एक अत्यंत खतरनाक रोग है। इसे 'पोलियो मायलिटिस' कहते हैं। यह रोग विषाणु द्वारा फैलता है। एक बार हो जाने पर व्यक्ति को संपूर्ण जीवन के लिए विकलांग बना देता है। पोलियो मुख्य रूप से पोलियो विषाणु 1, 2, व 3 प्रकार के विषाणुओं से होता है।

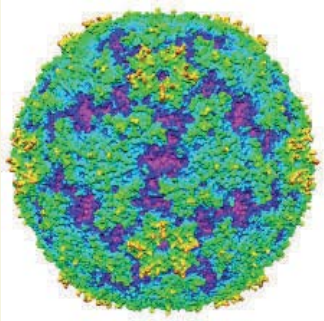

पोलियो का विषाणु मनुष्य की आंत में पलता बढ़ता है और अनुकूल परिस्थितियों में तंत्रिका तंत्र में सीधे या रक्त के माध्यम से पहुंच जाता है। तंत्रिका तंत्र में विषाणु के पहुंचने से शरीर के विभिन्न अंगों में लकवा मार जाता है। यहां तक कि सांस लेने की मांसपेशियां भी इससे प्रभावित हो सकती हैं।

पोलियो का वायरस गुदा और मुंह के रास्ते हमला करता है। इसके शुरुआती लक्षण हैं: बुखार, सिरदर्द, उल्टी, गर्दन में अकड़न और तमाम अंगों में दर्द होना। लगभग 200 संक्रमणों में से एक संक्रमण पक्षाघात के रूप में सामने आता है, जो सामान्यतः पैरों पर असर करता है। पक्षाघात के शिकार हुए औसतन 10 मरीजों में से एक मरीज की मृत्यु हो जाती है।

यह बीमारी अत्यधिक गर्मी या शुरुआती शरद ऋतु में होती है और मुख्य रूप से अधिक गर्म क्षेत्रों में बहुतायत से पाई जाती है। यह अधिकतर बाल्यावस्था (4-5 वर्ष की आयु तक) में ही होती है।

बीमारी का फैलाव

पोलियो विषाणु रोगी के शरीर से बीमारी के 6 से 8 सप्ताह बाद तक भी मल के द्वारा बाहर निकलता है। साफ-सफाई की समुचित व्यवस्था न होने या गंदगी और मक्खियों के कारण यह विषाणु मल से पुनः भोजन में चला जाता है और यह बीमारी फैलती है। इस बीमारी का मुख्य संवाहक मनुष्य है। प्रभावित बच्चों के संपर्क में जब स्वस्थ बच्चा आता है तब यह बहुत जल्दी फैलती है। इस बीमारी का मुख्य स्रोत बीमार व्यक्तियों की विष्ठा, मल, मूत्र, श्वसन के उत्सर्जित अपशिष्ट व कफ इत्यादि हैं। कभी-कभी पानी से भी इन विषाणुओं का आदान–प्रदान हो जाता है। इन विषाणुओं की परिपक्वता अवधि तीन से इक्कीस दिन की मानी जाती है लेकिन औसतन यह 7-12 दिन तक की देखी गई है। उद्भव अवधि अधिक होने से संक्रामकता बहुत अधिक होती है। शुरुआत में बहुत अधिक बेचैनी महसूस होती है। गर्भवती महिलाओं में पोलियों के प्रति अति सुग्राह्यता पाई जाती है।

पोलियो रोग का पूर्णतः बचाव संभव है। पोलियो विषाणु चूंकि सिर्फ मानव शरीर में पाया जाता है अतः इसका जड़ से उन्मूलन संभव है। उपचार के प्रथम चरण में यह आवश्यक है कि मानव शरीर में पोलियो के विरुद्ध लड़ने वाले तत्वों (एंटीबाडीज) की प्रचुरता हो। इसके लिए पोलियो की वैक्सीन (टीका) उपलब्ध है। वैक्सीन की खुराकें मुंह के माध्यम से दी जाती हैं और हर खुराक में दो बूंद दवा पिलाई जाती है। पहली खुराक बच्चे के जन्म पर देनी होती है। इसके बाद प्रथम वर्ष में तीन और खुराकें, डेढ़, ढाई और साढ़े तीन महीने की उम्र (45, 75 और 105 दिन पर) में दी जाती हैं। डेढ़ वर्ष और साढ़े चार वर्ष की उम्र में दो और खुराकें देने से भी शरीर में पोलियो विषाणु के प्रति एंटीबाडीज पर्याप्त मात्रा में बन जाते हैं और रोग से बचाव हो जाता है।

पल्स पोलियो अभियानः

सन् 1988 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने पोलियो मुक्त दुनिया के लिए अभियान शुरू किया था। किसी भी देश को पोलियो मुक्त घोषित करने के पहले यह देखा जाता है कि पिछले तीन वर्ष में वहां पोलियो का कोई नया मरीज न मिला हो। सन् 1988 में पोलियो उन्मूलन पहल शुरू होने के बाद से 5 लाख लोग (विशेषकर विकासशील देशों में) जो पोलियो की वजह से पक्षाघात के शिकार हो सकते थे, बचा लिए गए।

हमारे देश को पूर्ण रूप से पोलियो मुक्त करने के लिए सन् 1995 में पल्स पोलियो अभियान शुरू किया गया था। जब सन् 1988 में पल्स पोलियो

अभियान शुरू हुआ था, तब उसकी पहुंच केवल 40 प्रतिशत बच्चों तक ही थी, उस समय प्रत्येक वर्ष लगभग डेढ़ लाख बच्चे पोलियो की चपेट में आकर पक्षाघात के शिकार हो जाते थे। लेकिन सन् 1995 में भी यह संख्या कम नहीं थी। लगभग सात हजार बच्चों को पोलियो हर वर्ष विकलांग बना देता था। लेकिन आज सन् 2015 में हमारे देश में पिछले चार वर्षों से कोई भी बच्चा पोलियो से ग्रस्त नहीं है। हमारे देश में इस अभियान में लगभग 12 हजार करोड़ रुपए अब तक खर्च हुए। इस कार्यक्रम में लगभग 24 लाख वैक्सीनेटर शामिल हुए थे। लगभग 1.5 लाख सुपरवाइजर घर-घर जाकर जांच करते थे। इस कार्यक्रम में लगभग 17.2 करोड़ बच्चों को सुरक्षा कवच मिला। इसमें 35,325 केंद्रों से पोलियो संक्रमण की सूचना एकत्र की जाती थी। हमारे देश में सन् 2009 में लगभग 741 तथा 2010 में 42 पोलियो के मरीज पाए गए थे।

भारत में पोलियो का अंतिम मरीज 13 जनवरी 2011 में मिला। यह (WPV1) वाइल्ड पोलियो टाइप–1 केस पश्चिम बंगाल के हावड़ा का था। हावड़ा के शुभारारा गांव, पंचला ब्लाक की पांच वर्षीय रक्शा शाह को पोलियो का संक्रमण हुआ। संक्रमण के परिणाम स्वरूप उसके बाएं पैर की तुलना में दाहिना पैर बहुत पतला और कमजोर हो गया।

हमारे देश में 'दो बूंद जिन्दगी की' यह नारा बहुत ही प्रचलित हुआ। इसके साथ ही इस अभियान में केंद्र व राज्य सरकारों का बेहतर तालमेल, गैर सरकारी संगठनों का सहयोग तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा युनिसेफ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की निगरानी में हमने विपरीत परिस्थितियों में भी पोलियो की जंग जीत ली है।

पोलियो की जंग हमने जीत ली है पर भारत में पोलियो के लौट आने का खतरा पूरी तरह से खत्म नहीं हुआ है। अभी भी भारत में वाइल्ड पोलियो विषाणु का संक्रमण सीमा पार से कभी भी आ सकता है।

पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार, भूटान, अफगानिस्तान, नाइजीरिया व चीन आदि देशों में लगभग 102 ऐसे स्थान चिह्नित किए गए हैं जहां से यह खतरा भारत में पहुंच सकता है। इसलिए आवश्यकता यह है कि देश में जो भी बच्चे आएं उन्हें सीमा पर ही पोलियो वैक्सीन पिलाई जाए तथा पहले की तरह पांच वर्ष के बच्चों को नियमित रुप से पोलियो की खुराक पिलाना जारी रखा जाए।

डॉ. हेमलता पंत, सचिव (कार्यभार), जीव विज्ञान एवं ग्रामीण विकास सोसायटी, झूंसी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश के पद पर कार्यरत्त हैं। वह *जर्नल ऑफ नैचुरल रिसोर्स एंड डिवेलपमेंट* और *ग्रामीण विकास संदेश* पत्रिका की संपादक भी हैं।

किसानों के सूक्ष्मजीव मित्र

बलराम महापात्रा
ई-मेल: balarammohapatra09@gmail.com

पृथ्वी का जीवमंडल ऐसे जीवाणुओं से भरा हुआ है जिन्होंने इस ग्रह को जीवन जीने के योग्य बनाया है। इनमें कई तरह के जीवाणु, कवक, शैवाल और प्रोटोजोआ आदि शामिल हैं और अगर इन सबकी तुलना में रोग पैदा करने वाले कुछ जीवाणुओं को छोड़ दें तो हमारे जीवन में इनकी महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता। ये हमारे जीवमंडल में जीवन के लिए अनिवार्य तत्वों और पदार्थों के पुनर्चक्रण के द्वारा जीवमंडल का काम सुचारू रूप से चलाने में मदद करते हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि जीवाणु पृथ्वी पर जैव कार्बन का 50 प्रतिशत भाग तथा जैव नाइट्रोजन का 90 प्रतिशत भाग लिए हुए हैं जोकि बाकी सभी उपस्थित जीवाणुओं से अधिक है। अंटोनी वान लेवेन्होएक, लुई पास्चर तथा रोबर्ट कोच ने सूक्ष्मजीवविज्ञान को मानव कल्याण के लिए प्रयोग करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भोजन, चारे, सौंदर्य प्रसाधनों, उद्योगों, औषधियों और कृषि के क्षेत्र में सूक्ष्मजीवों के हालिया प्रयोग से जीवन अधिक आसान, सुरक्षित और संधारण योग्य बना है। कृषि में सूक्ष्मजीवों के प्रयोग से उत्पादकता में सुरक्षित और संवहनीय रूप से वृद्धि कर पाने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है जिसका कृषकों पर काफी सकारात्मक प्रभाव हुआ है। अगर कृषि की दृष्टि से देखें तो मृदा में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव पौधों की वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिससे फसल की उत्पादकता बढ़ती है। मृदा में जीवाणुओं की विविधता किसी भी अन्य वातावरण से अधिक होती है और पौधे की जड़ के आसपास का स्थान (रहिजोस्फीयर), जहां यह सूक्ष्मजीव रहते हैं (माइक्रो हैबिटैट), इनकी वृद्धि हेतु काफी अनुकूल है। ये मृदा कणों के छिद्रों में रहते हैं और पौधों से जुड़े रहते हैं। पौधे सामान्यतया विशिष्ट स्राव उत्पादित करते हैं (जड़ से निकलने वाले अधिकतर स्रावों की प्रकृति शर्करा और फिनोलिक्स की होती है), जिसे वे मृदा में छोड़ देते हैं। सूक्ष्मजीव (अधिकतर बैक्टीरिया) इन अणुओं को ढूंढ कर इनकी ओर आकर्षित होते हैं और अपनी वृद्धि और प्रजनन के लिए इनका प्रयोग करते हैं। इस प्रक्रिया में वे ऐसे विशिष्ट स्राव उत्पादित करते हैं जिनसे पौधों की वृद्धि और विकास में सहायता मिलती है। इस प्रकार पौधों और सूक्ष्मजीवों की इस आपसी प्रक्रिया से पौधों के विकास को गति मिलती है। इसीलिए इन सूक्ष्मजीवों को पौधों की वृद्धि में सहायक बैक्टीरिया (प्लांट ग्रोथ प्रोमोटिंग – PGP) कहा जाता है।

ऐसा अनुमान है कि जंगल की मिट्टी में सूक्ष्म जैव विविधता 5×10^{9} सैल्स /सें.मी. ^{3} के हिसाब से पाई जाती है और पृथ्वी के परितंत्र में पौधों की बजाय सूक्ष्मजीव ही सर्वाधिक प्राथमिक उत्पाद हैं (सूर्य की रोशनी से सीधे उत्पन्न हुई वनस्पति)।

प्लांट ग्रोथ प्रोमोटिंग (PGP) सूक्ष्मजीव क्या हैं?

पौधों की वृद्धि में सहायक (पी.जी.पी) सूक्ष्मजीवों को पौधों की जड़ के भाग में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव समुदाय के सबसे अनिवार्य अंग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस समुदाय का विकास मेजबान पौधे के सहयोग से होता है। ये विविध वातावरणों के अनुकूल हो जाने, तेज वृद्धि दर तथा पौधों की वृद्धि में सहायक होने, बहुत सारे प्राकृतिक और जेनो बायोटिक यौगिकों का चयापचय करके उन्हें अविषाक्त बना देने की अपनी क्षमता के कारण पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। पौधों की वृद्धि में सहायक पी.जी.पी सूक्ष्मजीवों के समूह के प्रमुख सदस्य हैं – एग्रो बैक्टीरियम (Agrobacterium), अरथ्रोबेक्टर (Arthrobacter), अजोटोबेक्टर (Azotobacter), अजोस्पीरिलम (Azospirillum), बेसिलस (Bacillus), स्यूडोमोनस (Pseudomonas), बुर्खोल्डेरिया (Burkholderia), अल्लोर्हिजोबियम (Allorhizobium), अजोर्हिजोबियम (Azorhizobium), ब्रद्ग्रहिज़ोबियम (Bradyrhizobium), मेसोर्हिजोबियम (Mesorhizobium), राइजोबियम (Rhizobium), स्ट्रैप्टोमाइसेज (Streptomyces), स्ट्रैप्टोस्पोरेंगियम (Streptosporangium) आदि हैं। ये पौधों की वृद्धि से जुड़े बहुत सारे कार्य जैसे नाइट्रोजन को फिक्स करना, स्ट्रेस (stress) से संबंधित हॉर्मोन एथीलीन को कम पैदा होने देना, पौधे द्वारा लौह तत्व के चयापचय के लिए औक्सिन, सायटोकिनिनस व सिड़ेरोफोर का संश्लेषण तथा रोगाणुरोधी क्षमता को बढ़ाना, फास्फोरस, पोटैशियम तथा सोडियम को घुलने लायक बनाना, भारी धातुओं तथा अन्य पदार्थों के विषाक्तता स्तर को कम करना, ऐंटिबायोटिक यौगिकों का उत्पादन और पानी तथा अन्य दैहिक तनावों को कम करने जैसे कार्य करते हैं।

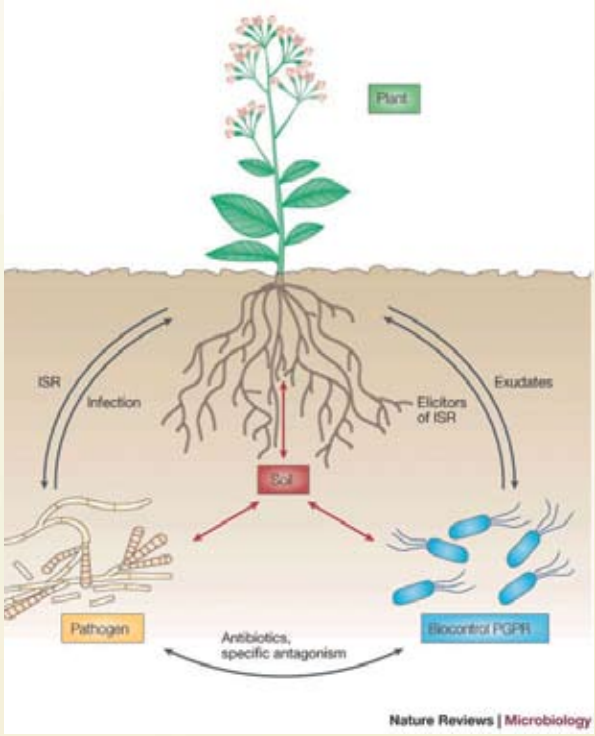

राइज़ो बैक्टीरिया (पीजीपीआर) पौधों, रोगजनकों और मिट्टी के बीच पारस्परिक क्रिया। (स्रोतः हास, डी. एवं डेफैगो, जी., 2005)

कृषकों के मित्र

जैसा कि हम सब जानते हैं कि हमारी जनसंख्या काफी तेज गति से बढ़ रही है और हमें इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भी भोजन का प्रबंध करना है। रासायनिक खादों, कीटनाशकों और हानिकारक रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से हमारे वातावरण और मृदा के स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो गया है। वातावरण को सुरक्षित रखने का एकमात्र उपाय है कि रासायनिक खादों का प्रयोग कम करके हरित खादों (प्राकृतिक कृषि आधारित रसायनों और सूक्ष्मजीवों से बनी संरचनाओं से युक्त) का उपयोग करें और कृषि के बेहतर, अधिक सुरक्षित, पर्यावरण सम्मत और देशी तरीकों का प्रयोग करें। इस विषय में कृषकों के लिए रासायनिक खादों के स्थान पर सूक्ष्मजीवों से बना 'जैविक उर्वरकों' का प्रयोग करना सबसे अच्छा विकल्प है। यह जीवित सूक्ष्मजीवों से बनाए जाते हैं जिन्हें बीजों या मृदा के निकटवर्ती पौधे के किसी भी भाग पर लगाने से ये आसपास के सारे क्षेत्र में फ़ैल जाते हैं और पौधों की वृद्धि में मदद करते हैं। बेहतरीन फसल उत्पादन प्राप्त करने के लिए इनके साथ हरित खादों और कम्पोस्ट का प्रयोग भी किया जा

सकता है। इस उद्देश्य के लिए प्रयुक्त सूक्ष्मजीवों को ''जैव नियंत्रण कारकों'' के रूप में जाना जाता है क्योंकि ये पौधों में बीमारी पैदा करने वाले कीटों और रोगाणुओं को मार देते हैं और इस प्रकार समेकित कीटनाशक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण भाग हैं।

पी. जी. पी. सूक्ष्मजीवों को सामान्यतः ठोस पदार्थों जैसे चाक, पांस, चारकोल पाउडर आदि के साथ मिलाकर बनाया जाता है। इसमें सूक्ष्मजीवों को इच्छित पानी की मात्रा में उचित अनुपात में मिलाकर बाजार में अलग-अलग व्यापारिक नामों से बेचा जाता है। अमेरिका के कृषि विभाग और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने रासायनिक उर्वरकों की न्यूनतम मात्रा के साथ मिलाने के लिए इन जैव-उर्वरकों की मात्रा निश्चित की हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने सैकड़ों उपलब्ध जैव-उर्वरकों के साथ इस दिशा में काफी प्रगति की है लेकिन वैज्ञानिक संगठनों तथा उद्योगों के तालमेल से जुड़ी उत्पादन तकनीक और व्यापारीकरण के क्षेत्र में कमी के चलते भारत अब भी काफी पीछे है।

सूक्ष्मजीव आधारित इन जैव-उर्वरकों की वैश्विक बाजार में काफी मांग है और बाजार में बहुत से अच्छे उत्पाद उपलब्ध भी हैं जैसे – डाईगल्ल, अजो-ग्रीन, रहिजोप्लस, ब्लू सर्किल, विक्टस, बायो-सेव 10, माइकोस्टॉप आदि। भारत में अभी तकनीकी कारणों के चलते इन उत्पादों की कमी है। हालांकि भारत में भी अजोटोबेक्टर, अजो स्प्रिलियम, राइजोबियम तथा बेसिलस आधारित कई अच्छे जैव-उर्वरक उपलब्ध हैं। इन जैव उर्वरकों के अच्छे औद्योगीकरण के लिए बाजार में इनकी मांग, निरंतर और व्यापक कार्रवाई, सुरक्षा, स्थायित्व, ढोने वाले साधनों की उपलब्धता और कम लागत जैसे कारकों की आवश्यकता है। इन सब बातों को देखते हुए अब ऐसे नए विशिष्ट परितंत्रों की आवशयकता है जिनमें यह सूक्ष्मजीव प्रजाति पाई जा सके। आजकल वैज्ञानिक विशिष्ट क्षमता वाले

बैक्टीरिया और फफूंद प्रजातियों पर काम कर रहे हैं जो सभी तरह की मृदा और फसलों के लिए सर्वोत्तम काम कर सकें। इस प्रकार इन सूक्ष्मजीवों के जेनेटिक बदलाव के माध्यम से अधिक क्षमता वाले पी.जी.पी. बैक्टीरिया को विकसित करने का काम प्रगति पर है।

भावी संभावनाएं और चुनौतियां

संधारणीय और पर्यावरण अनुकूल कृषि के लिए प्रभावशाली समाधान प्राप्त करने में पी.जी.पी बैक्टीरिया बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अभी तक ग्रीन हाउस और गमलों में इन पी.जी. पी बैक्टीरिया को उपयुक्त मात्रा में प्रयोग करने से काफी सफलता मिली है जिससे फसलों में इनके प्रयोग की अच्छी संभावनाएं बन सकती हैं। इनकी कार्यप्रणाली को भली प्रकार समझकर सुधार करने से हम भोजन-उत्पादन से जुड़े वातावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं। इस क्षेत्र में हुए ताजा अनुसंधान से यह रोचक तथ्य भी सामने आया है कि ये सूक्ष्मजीव भारी धातुओं तथा अन्य हानिकारक पदार्थों के विषाक्तता स्तर को कम कर सकते हैं। विषाक्तता स्तर को कम कर सकने वाली इनकी योग्यता की कार्यप्रणाली को जानना देश के युवा और मेधावी वैज्ञानिकों की रुचि का विषय हो सकता है। कृषि को और अधिक लाभकारी बनाने के लिए इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा (अनुसंधान या इंजीनियरिंग) की काफी संभावनाएं हैं। डी.बी. टी., डी.एस.टी. और सी.एस.आई.आर द्वारा वित्त-पोषित बहुत सारी कृषि अनुसंधान संस्थाएं और विश्वविद्यालय (आई.ए.आर.आई, सी.आर.आर.आई, सी.आर.आई.डी.ए और एन.आई.पी.जी.आर) आदि इस कार्य के लिए उपयुक्त जैव उर्वरक बनाने और उनकी कार्यप्रणाली को समझने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

बलराम महापात्रा आई.आई.टी खड़गपुर, भारत-721302 में एनवायरनमेंटल माइक्रोबायोलॉजी प्रयोगशाला में पी.एच.डी के रिसर्च स्कॉलर हैं।

(अनुवादकः सोनिया राणा) ■

कोख-दानः मातृत्व का एक नया आयाम *(पृष्ठ 7 को शेषांश)*

तथापि वे बैंक से दाता की ऊंचाई, भार, त्वचा का रंग, शैक्षिक योग्यता, पारिवारिक पृष्ठभूमि आदि की जानकारी ले सकते हैं।

कोखदायी मां का चयन कोई आसान कार्य नहीं है। वह उपयुक्त आयु (21-35 वर्ष) को होनी चाहिए, बच्चे को गर्भ में धारण करने और जन्म देने के लिए उसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए। उसके परिवार में किसी को आनुवांशिक रूप से संचरणीय रोग नहीं होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि वह अविवाहित हो अथवा उसको बच्चा न हो।

आमतौर पर वे महिलाएं जो कोखदायी मां बनने के लिए तैयार होती हैं, आर्थिक विपन्नता की स्थिति में होती हैं। इसलिए, यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनका शोषण न हो भारतीय चिकित्सा परिषद् ने कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत विकसित किए हैं। भारत सरकार ने उनके हित को ध्यान में रखते हुए उन मार्गदर्शक सिद्धांतों के आधार पर कानून बनाया है। इसका लक्ष्य जैविक माता-पिता के दायित्वों, कोखदायी मां के दायित्वों, उसकी फीस, गर्भ के दौरान उसका स्वास्थ्य बीमा, बच्चे का जन्म, बच्चे पर अधिकार आदि मुद्दों को स्पष्टता से परिभाषित करना है। यदि जैविक माता-पिता विदेशी राष्ट्रीयता के हैं तो बच्चे की राष्ट्रीयता के प्रश्न पर भी विचार किया गया है। बच्चे के माता-पिता के लिए बच्चे को स्वीकार करना बाध्यकारी होता है चाहे उसका लिंग कोई भी हो और यहां तक कि यदि वे जुड़वां या विकलांग भी हों तो भी उन्हें स्वीकार करना ही होगा। यह अनिवार्य होता है कि उपचार शुरू करने से पहले, इन सब शर्तों को विस्तार से लिख कर जैविक माता-पिता और कोखदायी मां (और उसके परिवार) से एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए जाएं ताकि दोनों पक्षों के हित सुरक्षित रहें।

हाल ही में स्वीडन के डॉ. मैट्स ब्राननस्ट्रोम ने एक ऐसी महिला में गर्भाशय प्रत्यारोपण का मामला रिर्पोट किया है जो गर्भाशयविहीन जन्मी थी। बाद में उसने गर्भधारण किया और 4 सितंबर 2014 को एक स्वस्थ शिशु को जन्म दिया। आने वाले वर्षों में यह क्रियाविधि निश्चय ही अधिक लोकप्रिय हो जाएगी और इससे कोखदायी मांओं की मांग कम हो सकती है। तथापि, कोखदायी मांओं का रुख केवल गर्भाशय-दोष ग्रस्त रोगी ही नहीं करते हैं। सामान्य, कैरियर पर ध्यान देने वाली तथा प्रदर्शन व्यवसाय से जुड़ी महिलाएं यथासंभव मातृत्व को टालने की चेष्टा करती हैं और उनमें से कुछ हो सकता है कोख-दान मातृत्व का वरण करें। इसलिए, वास्तविक परिवर्तन तब आएगा जब वैज्ञानिक एक कृत्रिम गर्भाशय का आविष्कार कर लेंगे जिसमें पूरे वृद्धि काल में भ्रूण परवान चढ़ सकेगा और जैविक माता-पिता निर्धारित तिथि पर बच्चे को घर ले जा सकेंगे – मानव प्रजनन पूरी तरह एक यांत्रिक प्रक्रम हो जाएगा।

डॉ. एम.एस.एस. मूर्ति, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई से वरिष्ठ वैज्ञानिक के रूप में 1997 में सेवानिवृत्त हुए। यह एक लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और इन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं हैं।

(अनुवादकः रामशरण दास) ■

चावल की आर्गेनिक खेती

टी. बी. बागची एस. राय
ई-मेल: torit.crijaf09@gmail.com

कृषि ने ही मानवों को जीवित रहने हेतु भोजन के लिए फसलें उगाने के योग्य बनाया। जहां पुराने समय में इसकी भूमिका केवल पेट भरने के लिए फसलें उगाने तक सीमित थी, अब यह विश्व का सबसे बड़ा उद्योग बन चुका है। आने वाले दशकों में बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव को देखते हुए कृषि का उत्पादन कई गुणा बढ़ाना होगा। लेकिन अधिक उत्पादन की प्राप्ति के लिए लोग कई रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग करते आ रहे हैं। कई बार तो यह प्रयोग अंधाधुंध होता है। कृषि रसायनों के इस अंधाधुंध प्रयोग के कारण मानवों के साथ-साथ जानवरों के स्वास्थ्य को भी खतरा पैदा हो गया है और वातावरण प्रदूषण का खतरा भी बढ़ रहा है। उस तरीके की तुलना में कृषि के आर्गेनिक तरीके ने पर्यावरण के अनुकूल होने के कारण विश्व भर में अपनी पहचान बनानी शुरू की है। आर्गेनिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए हमारे राष्ट्रीय स्तर पर और यूरोपीय स्तर पर नीतियां बनाई गई हैं। इसके परिणामस्वरूप नब्बे के दशक में कई देशों में आर्गेनिक कृषि को खूब बढ़ावा मिला। लेकिन भारत में आर्गेनिक कृषि की प्रगति काफी धीमी रही है। वर्तमान में केवल 54.1 लाख हेक्टयर क्षेत्र पर ही आर्गेनिक खेती होती है (ए पी ई डी ए, भारत)। भारत के अधिकतर भागों में आर्गेनिक चावल की मांग तेजी से बढ़ रही है और निर्यातक भी तेजी से आर्गेनिक चावल को अपनी उत्पाद सूची में शामिल कर रहे हैं।

आर्गेनिक कृषि की अवधारणा

आर्गेनिक कृषि की अवधारणा कई मिले जुले कामों और लक्ष्यों से जुडी है, जैसे संधारणीय कृषि के साथ-साथ संसाधनों का संरक्षण, जैव विविधता का अनुरक्षण और मानव स्वास्थ्य संबंधी लाभ। सामान्यतया यह माना जाता है कि संपूर्ण जनसंख्या के लिए भोजन की मांग को पूरा करने हेतु उत्पादन को बढ़ाना होगा जिसे केवल रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल, पौधों की सुरक्षा करके और उनकी वृद्धि को बढ़ावा देने वाले रासायनिक तत्वों और उपयुक्त प्रबन्धन तकनीकों का प्रयोग करके ही हासिल किया जा सकता है। इस लिहाज से तो आर्गेनिक कृषि मात्र एक फैशन जैसी लगती है। लेकिन अगर दीर्घकालीन दृष्टि से देखें तो उत्पादन से समझौता किए बिना सारी दुनिया को बचाने का एकमात्र तरीका यही है और यह निःसंदेह संभव भी है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किया जा सकता है। पौधों की सुरक्षा के लिए वानस्पतिक साधनों का भी प्रयोग किया जा सकता है और सबसे बढ़कर, अधिक उत्पादन की चुनौती को पूरा करने के लिए कई प्रकार के बायोटिक और गैर-बायोटिक तनावों को सह सकने वाली अधिक उत्पादन में सक्षम किस्में उगानी होंगी।

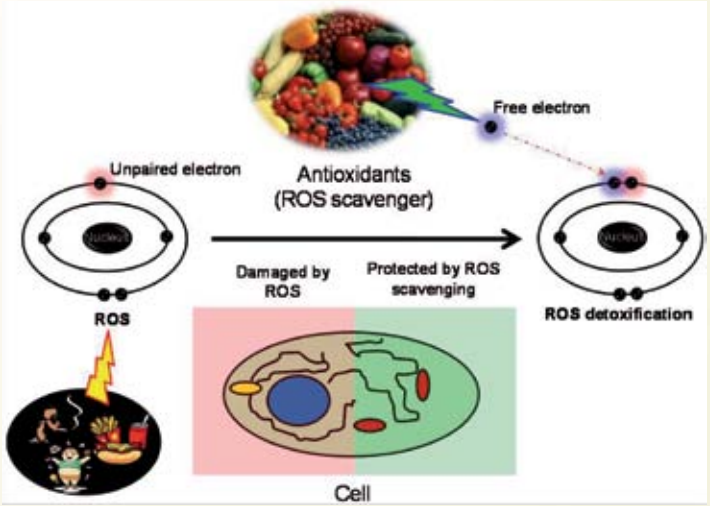

आक्सीकरण रोधी द्वारा आर ओ एस (रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज) जैसे मुक्त कणों को खत्म करने का रेखाचित्र

आर्गेनिक उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी क्यों हैं?

कृषि उत्पादन की पारम्परिक और आर्गेनिक विधियों में आधारभूत अंतर हैं लेकिन इस बारे में बहुत सीमित सी सूचना उपलब्ध है कि प्रक्रिया में परिवर्तन से पोषण की गुणवत्ता, विशेषकर आक्सीकरण रोधी तत्वों की मात्रा किस प्रकार से प्रभावित होती है। यह अभी तक पूर्ण रूप से साबित नहीं हो पाया है कि क्या कृषि के तरीके में बदलाव से फसल की पोषण सम्बन्धी गुणवत्ता में काफी अंतर आ सकता है। महामारी विज्ञान के अध्ययनों में निरंतर यह पाया गया है कि फलों और सब्जियों को खाने और कैंसर, कार्डियोवैस्कुलर रोगों, डायबिटीज और बढ़ती आयु में होने वाले रोगों के जोखिम के बीच प्रतिलोमानुपाती सहसंबंध हैं। ये दीर्घकालिक बीमारियां महत्वपूर्ण कोशिकामय वृहदाणु (macromolecules) जैसे प्रोटीन, वसा और डी एन ए के रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज (आर ओ एस) के द्वारा होने वाले आक्सीकरण

आर्गेनिक चावल की खेती के कुछ महत्वपूर्ण तत्व

उर्वरक और खाद	मिलने वाला पोषक तत्व	प्रयोग का तरीका	वानस्पतिक कारक एवं अन्य पदार्थ	उपयोग
1. सुन्हेमप (क्रोटोलेरिया जन्किया)	नाइट्रोजन का अच्छा स्रोत	कृषि हेतु भूमि तैयार करने के समय भूमि में मिलाना	1. नीम का तेल	कीटों के आक्रमण हेतु छिड़काव
2. लोबिया	हवा से नाइट्रोजन लेती है	भूमि में मिलाना	2. पैरिथ्रुम (Pyrethrum)	कीटों के आक्रमण हेतु छिड़काव
3. सेस्बनिया (Sesbania sp.)	नाइट्रोजन का उत्तम स्रोत	छोटे-छोटे पौधों को ही गारा बनाते हुए भूमि में मिलाना	3. निकोटिनः तम्बाकू से प्राप्त की जाती है	कीटों के आक्रमण हेतु छिड़काव
4. आर्गेनिक खाद (गाय का गोबर, मुर्गियों का अवशिष्ट आदि)	नाइट्रोजन का उत्तम स्रोत	जुताई के समय भूमि में मिलाना	4. ट्राईकोडर्मा Tricoderma sp. (सूक्ष्मजीव कीटनाशी)	कीट और रोग नियंत्रण
5. फ्लाई ऐश, भूसा आदि जलने से पैदा राख	पोटाशियम का उत्तम स्रोत	भूमि में मिलाना	5. सिंचाई के लिए स्वच्छ पानी	फसलों की सिंचाई
6. रॉक फास्फेट	फास्फोरस का उत्तम स्रोत	भूमि में मिलाना	6. जूट के थैले	पैकिंग और भंडारण

आक्सीकरण रोधी यौगिकों से परिपूर्ण काले, लाल और भूरे चावल

से सम्बंधित हैं। फेनोलिक आक्सीकरण रोधी तत्व आर ओ एस को उसके द्वारा कोई नुक्सान पहुंचाने या रोग फैलाने से पहले ही निष्क्रिय कर देते हैं। इसके अतिरिक्त, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू एच ओ) तथा खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ ए ओ) अमेरिका द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार गैर-संक्रामक रोगों की रोकथाम में भोजन और पोषण की बहुत बड़ी भूमिका है। उन्होंने दिल की बिमारियों तथा कैंसर की रोकथाम में पौधों से प्राप्त होने वाले फाइटोकेमिकल्स (phytochemicals) की भूमिका पर भी प्रकाश डाला है। सामान्यतया इस संकल्पना के अनुसार पोषक तत्वों की अधिकता से पौधे में वृद्धि और विकास होता है और फेनोलिक आक्सीकरण रोधी जैसे द्वितीयक चयापचयक पदार्थों के उत्पादन हेतु वांछित स्रोतों में कमी आती है। वास्तव में इस प्रकार से हमेशा ही प्राथमिक चयापचय और द्वितीयक चयापचय के बीच एक तरह का लेन-देन होता रहता है – प्राथमिक चयापचय हमेशा वृद्धि और विकास का कारक होता है और द्वितीयक चयापचय कई तनावों के विरुद्ध रक्षाकवच का काम करता है। ऐसा लगता है जैसे इन दोनों प्रक्रियाओं के बीच पोषक तत्वों की प्राप्ति को लेकर रस्साकसी चलती रहती है क्योंकि इन दोनों को ही पोषक तत्व प्रकाश संश्लेष्ण नामक साझे स्रोत से लेने होते हैं। हर बार पौधे को अपने आसपास के वातावरण के आधार पर इन दोनों प्रक्रियाओं के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। क्योंकि आर्गेनिक कृषि में पारंपरिक कृषि की तरह रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग नहीं होता, इसीलिए इस स्थिति में पौधे पर निरंतर पोषक और जीवीय दबाव बने रहते हैं। जिससे अंततः द्वितीयक चयापचयक पदार्थों के उत्पादन का पक्ष मजबूत होता है। (द्वितीयक चयापचयक पदार्थों का अर्थ है ऐसे तत्व जो पौधे को जीवित रखने के लिए अनिवार्य नही हैं जैसे डी एन ए, आर एन ए, क्लोरोफिल, अमीनो एसिड और स्टार्च आदि।) फेनोलिक आक्सीकरण रोधी से आशय साधारण फेनोलिक अम्ल और फ्लेवोनोइड दोनों से ही है। ये पौधे के द्वितीय चयापचय के उत्पाद हैं और पौधे के सर्वव्यापक प्राकृतिक भाग हैं। इनमें कैफीन, फेनोलिक आक्सीकरण-रोधी और आइसो फ्लेवोनोइड जैसे वानस्पतिक रसायन शामिल हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि पौधे द्वितीय चयापचयक पदार्थों का उत्पादन फोटो आक्सीकरण, शाकाहारी कीटों तथा जानवरों द्वारा खाए जाने और रोगाणुओं के हमले से बचने के लिए करते हैं। इसके अतिरिक्त वे पौधे के विकास में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इनमें से कई तो ऐसे पिगमेंट हैं जो परागण करने वाले कीटों को आकर्षित करते हैं। द्वितीय चयापचयक पदार्थों का संयोजन अलग-अलग पौधों और उनकी अलग-अलग कोशिकाओं में भिन्न भिन्न होता है। वैज्ञानिकों ने अभी हाल ही में इस बात पर जिज्ञासा व्यक्त की है कि क्या परंपरागत तरीके से उगाई जाने वाली फसलों में फेनोलिक आक्सीकरण रोधी तत्वों का स्तर कम होता है? इसका कारण यह होता है कि इस तरीके की कृषि में रासायनिक खादों और कीटनाशकों का अधिकतम प्रयोग होता है जिससे प्राक्रतिक रूप से बनने वाले पौधे के रक्षात्मक चयापचयी तंत्र का विकास नही हो पाता। फेनोलिक आक्सीकरण रोधी तत्वों की मात्रा के सन्दर्भ में आर्गेनिक और परम्परागत तरीके से उगाए गए फलों और सब्जियों में जब अंतर की जांच की गई तो यह सम्भावना पता लगी कि आर्गेनिक उत्पाद परम्परागत तरीके से उगाए गए उत्पादों की तुलना में अधिक लाभकारी होंगें। लेकिन इस विषय में उपलब्ध साहित्य के भली प्रकार अध्ययन से यह पता लगता है कि आर्गेनिक सब्जियों में कुछ खनिजों व एस्कॉर्बिक अम्ल के अधिक होने तथा नाइट्रेटों के कम पाए जाने के अतिरिक्त इन दोनों तरीकों से उगाए गए उत्पादों के मध्य कोई सुसंगत अंतर नहीं है।

सी आर आर आई, कटक में आर्गेनिक चावल की कृषि

हालांकि, इन अध्ययनों से किसी भी निष्कर्ष पर पहुंच पाना आसान नही है क्योंकि ये निष्कर्ष शोधकर्ताओं द्वारा विभिन्न प्रकार की कृषि, तथा फसल उगाने के विविध तरीकों और सैंपल लेने व विश्लेषण के काफी भिन्न तरीके प्रयोग करके निकाले गए होंगे। इसके अतिरिक्त, अधिकतर अध्ययनों ने अभी फेनोलिक आक्सीकरण रोधी तत्वों के मानक स्तर को निश्चित नहीं किया है क्योंकि अभी तक इन्हें मानवीय स्वास्थ्य के लिए अधिक महत्वपूर्ण नही समझा जाता था। हालांकि इस विषय पर आम सहमति बनी हुई है कि कृषि के दोनों तरीकों के उत्पादों में द्वितीयक चयापचयक तत्वों की मात्रा में काफी अंतर आ सकता है क्योंकि कृषि के इन दो तरीकों में फसल पर पड़ने वाले तनाव की मात्रा में निश्चित तौर पर अंतर है। इसके अतिरिक्त कई अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जिन पौधों में काफी मात्रा में पोषक तत्व थे, उनमें फेनोलिक आक्सीकरण रोधी तत्वों का संग्रह कम था। कुछ शोधकर्ताओं ने बताया है कि आर्गेनिक तरीके से उगाई गई स्ट्रॉबेरी, मेर्रिओं बेरी तथा मीठी मकई में एस्कोर्बिक एसिड तथा फेनोलिक पदार्थों की अधिक मात्रा पाई गई। उत्तर पूर्व की लाल चावल की कुछ किस्मों (ममीहंगर, चखा, नाल्बोरा, असम बिरोइन, गाँधी बिरोइन, साथी, आदि) में भी सफ़ेद चावल की तुलना में आक्सीकरण रोधी यौगिकों जैसे फेनोलिक, फ्लेवोनॉइड और अन्थोसियेनिन की अधिक मात्रा पाई गयी। दलने वाली मशीन की तुलना में पारंपरिक ढेकी से प्रसंस्कृत करने पर उनका अधिकतम पोषण सुरक्षित रहता है और यह चावल ह्रदय रोगों को न्यूनतम करने में मददगार है।

सी आर आर आई, कटक में आर्गेनिक कृषि के अंतर्गत उगाई गई चावल की किस्म अन्नपूर्णा की 19 सेंटीमीटर लंबी बालियां

शेष पृष्ठ 18 पर

दुग्धशर्करा असह्यता: शरीर की दुग्ध पाचन अक्षमता

डॉ. यतीश अग्रवाल
ई-मेल: dryatish@yahoo.com

विश्व में अनेक बालक एवं 50 से 65 प्रतिशत तक वयस्क दूध की शर्करा अर्थात लैक्टोस के पाचन में अक्षम होते हैं एवं परिणामस्वरूप दुग्धपदार्थों को लेने के पश्चात् उन्हें दस्त, गैस बनने एवं पेट फूलने की शिकायत बनी रहती है। इस विकार को 'लैक्टोस इनटॉलरेंस' यानि दुग्धशर्करा असह्यता कहा जाता है जिसमें चिकित्सक के परामर्श की भी थोड़ी जरूरत होती है और साथ ही आहार संबंधी चयन की भी।

दुग्धशर्करा असह्यता के कारक

दुग्धशर्करा (लैक्टोस) असह्यता का सामान्य कारण है लैक्टेस की कमी। लैक्टेस एक ऐसा एन्ज़ाइम है जो व्यक्ति की छोटी आंत में बनता है। आमतौर पर लैक्टेस दुग्धशर्करा (लैक्टोस) को दो सरल शर्कराओं में बदल देता है – ग्लूकोज़ तथा गेलेक्टोज़; ये दोनों शर्कराएं आंतों के अस्तर से शरीर के रुधिर प्रवाह में अवशोषित हो जाती हैं।

व्यक्ति के दुग्धशर्करा के प्रति असहिष्णु होने पर आहार के रूप में ली जाने वाली दुग्धशर्करा प्रसंस्कृत एवं रुधिर में अवशोषित होने की जगह बड़ी आंत में पहुंच जाती है। बड़ी आंत में पहुंचने पर बिना पची दुग्धशर्करा में सामान्य जीवाणु मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में दुग्धशर्करा असह्यता के रोगलक्षण एवं संकेत व्यक्त होते हैं।

बहुत से लोगों में लैक्टेस का स्तर कम होता है किंतु वे दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादों को पचा लेते हैं। व्यक्ति के वास्तव में दुग्धशर्करा असहिष्णु होने पर लैक्टेस की कमी, दुग्ध उत्पादों को लेने के बाद रोगलक्षणों के रूप में उभर आती है।

दुग्धशर्करा असह्यता के प्रकार

दुग्धशर्करा असह्यता तीन प्रकार की होती है। तीनों में ही लैक्टेस की कमी को उत्तेजित करने वाले कारक भिन्न होते हैं।

आनुवंशिक कमी

दुग्धशर्करा असह्यता के साथ जन्म लेने वाले शिशु जिनमें लैक्टेस एंजाइम गतिविधि का पूर्णतः अभाव होता है, बहुत कम होते तो हैं। यह विकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में एक आनुवंशिक तरीके से हस्तांतरित होता है जिसे 'ऑटोज़ोमल रिसेसि' कहा जाता है जिसका अर्थ है माता और पिता दोनों से एक ही प्रकार के ज़ीन का शिशु देह में पहुंचना।

समय से पूर्व जन्म लेने वाले शिशुओं में कई बार दुग्धशर्करा असह्यता पाई जाती है जिसका कारण है अपर्याप्त लैक्टेस स्तर।

प्राथमिक दुग्धशर्करा असह्यता

यह दुग्धशर्करा असह्यता का सबसे आम प्रकार है। प्राथमिक दुग्धशर्करा असह्यता ग्रस्त रोगी शुरू में पर्याप्त लैक्टेस युक्त होते हैं जो शिशुओं की ज़रूरत है क्योंकि उनका अपना पूरा पोषण दूध पर ही निर्भर होता है। जैसे-जैसे शिशु दूध के साथ अन्य पदार्थ भी आहार में लेने लगता है लैक्टेस उत्पादन आमतौर पर कम हो जाता है पर फिर भी इतना बना रहता है कि वह एक सामान्य वयस्क के आहार के दुग्ध पदार्थों की पाचन क्षमता जितना हो।

प्राथमिक दुग्धशर्करा असह्यता में लैक्टेस उत्पादन तेज़ी से गिरता है जिससे वयस्क होने तक व्यक्ति के लिए दुग्ध उत्पादों का पाचन कठिन बन जाता है। प्राथमिक दुग्धशर्करा असह्यता आनुवंशिकता पर निर्भर होती है। एशिया से संबद्ध व्यक्तियों में यह काफी मात्रा में दिखाई देती है।

माध्यमिक दुग्धशर्करा असह्यता

छोटी आंत से संबंधित किसी प्रकार के रोग, चोट या सर्जरी के पश्चात् लैक्टेस उत्पादन कम हो जाने की स्थिति में माध्यमिक दुग्धशर्करा असह्यता उत्पन्न हो जाती है। माध्यमिक दुग्धशर्करा असह्यता से जुड़े रोगों में, सेलियाक रोग, जीवाणुओं की अभिवृद्धि एवं क्रॉह्न रोग सम्मिलित हैं। इन अंतर्हित विकारों का इलाज हो जाने पर लैक्टेस स्तर में वृद्धि होने लगती है एवं साथ ही रोगलक्षणों एवं संकेतों में सुधार दिखने लगता है, हालांकि इसमें समय ज़रूर लग सकता है।

ज़ोखिम बढ़ाने वाले कारक

वयस्क या शिशु दोनों में दुग्धशर्करा असह्यता की ज़ोखिम वृद्धि के निम्न कारक हैं:

बढ़ती हुई उम्र

दुग्धशर्करा असह्यता प्रायः किशोरावस्था में उभरती है। शिशुओं और कम उम्र के बच्चों में सामान्यतः यह नहीं देखी जाती।

जातीयता

दुग्धशर्करा असह्यता किसी विशेष मानव जातीय वर्ग से संबद्ध हो सकती है। हालांकि भारतीय मिथकीय परंपरा में कृष्ण का संबंध दूध और माखन से जुड़ा है किंतु हमारे यहां भी दुग्धशर्करा असह्यता काफ़ी लोगों में पाई जाती है।

समयपूर्व प्रसव

समय से पूर्व जन्म लेने वाले शिशुओं में भी दुग्धशर्करा असह्यता होनी संभव है। इसका कारण है – नवें माह के उत्तरार्द्ध से पूर्व शिशु की छोटी आंत में लैक्टेस उत्पन्न करने वाली कोशिकाओं का विकास न हो पाना।

वायरल अथवा जीवाणु जनित दस्त होना

बहुत से नवजात शिशुओं एवं बच्चों में वायरल या जीवाणु जनित डायरिया होने के बाद दुग्धशर्करा असह्यता देखी गई है।

छोटी आंत के रोग

छोटी आंत से संबंधित कुछ समस्याओं में भी दुग्धशर्करा असह्यता हो जाती है, जैसे कि – जीवाणु अभिवृद्धि, सेलियाक रोग एवं क्रॉह्न रोग।

कतिपय कैंसर उपचार

कैंसर रोग में दी जाने वाली उदर की रेडियोथेरैपी या फिर कीमोथेरैपी के कारण होने वाली आंतों की समस्याओं के चलते दुग्धशर्करा असह्यता का ज़ोखिम बना रहता है।

रोगलक्षण

दुग्धशर्करा असह्यता के रोगलक्षण एवं संकेत – आमतौर पर दूध या दूध से बने आहार को लेने के 30 मिनट से 2 घंटे बाद तक उभरते हैं। सामान्य संकेत एवं रोगलक्षण इस प्रकार हैं:

- डायरिया
- मतली एवं कभी-कभार उल्टी होना
- आंतों की ऐंठन
- पेट फूलना
- गैस बनना

चिकित्सक से कब मिलें?

दुग्ध उत्पादों को लेने के बाद इस प्रकार के रोगलक्षण एवं संकेत बार-बार व्यक्त होने पर दुग्धशर्करा असह्यता के सुनिश्चित रोगनिदान के लिए अपने पारिवारिक चिकित्सक या गैस्ट्रोएंटेरोलॉजिस्ट से मिलना जरूरी है ताकि वह रोग निदान के सही परामर्श भी साथ-साथ दे सके।

इस बीच क्या करें?

रोग का लेखा-जोखा रखें

रोज लिए जाने वाले विभिन्न उत्पादों पर जैसे कि दूध, आइसक्रीम, दही, पनीर आदि पर नज़र रखें और साथ ही यह विवरण भी कि इस प्रकार के पदार्थ किस समय और किन अन्य पदार्थों के साथ लिए गए। चिकित्सक के लिए आपके दिए गए विवरण से यह सुनिश्चित कर पाना संभव होगा कि कौन से और किस मात्रा के दुग्ध उत्पाद आपके रोग के लिए जिम्मेदार हैं। रोग निदान में व्यक्ति द्वारा प्रदान किया गया यह आहार संबंधी विवरण काफी सहायक सिद्ध हो सकता है।

दुग्ध उत्पादों से बचने का प्रयास

दुग्धशर्करा असह्यता की आशंका होने पर कुछ दिनों के लिए अपने आहार में दुग्ध उत्पादों को शामिल न करें। ऐसा करने पर यदि रोगलक्षणों में सुधार होता हो तो चिकित्सक के लिए रोग निदान सुनिश्चित करना संभव हो पाएगा।

रोगनिदान

चिकित्सक रोगनिदान के लिए नीचे दिए गए परीक्षणों में से एकाधिक करवाने की सलाह भी दे सकता है:

हाइड्रोजन ब्रेथ टेस्ट

इस परीक्षण में रोगी को ऐसे तरल पदार्थ पिलाए जाते हैं जिनमें उच्च मात्रा में दुग्धशर्करा विद्यमान हो। ऐसा करने के पश्चात् नियमित अंतराल पर रोगी के श्वास में हाइड्रोजन की मात्रा का मापन किया जाता है। सामान्यतः बहुत कम मात्रा में ही हाइड्रोजन का संज्ञान होता है किंतु शरीर यदि दुग्धशर्करा पाचन में असहिष्णु हो तो वह शर्करा बड़ी आंत में ख़मीर के रूप में बदलने लगती है और हाइड्रोजन तथा अन्य गैसों को जन्म देती है जो आंतों में अवशोषित होती हैं और गैस के रूप में बाहर भी निकलती हैं। सांस परीक्षण में हाइड्रोजन की मात्रा सामान्य से अधिक होने पर यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति दुग्धशर्करा का पूरी तरह पाचन करने एवं शरीर द्वारा उसे अवशोषित करने में अक्षम है।

लैक्टोस टॉलरेंस टेस्ट

व्यक्ति की लैक्टोस सहिष्णुता के मापन के लिए उसे ऐसा तरल पदार्थ पिलाया जाता है जिसमें दुग्धशर्करा की उच्च मात्रा हो। ऐसा पेय लेने के बाद कुछ रुधिर परीक्षण किए जाते हैं ताकि व्यक्ति के रुधिर प्रवाह में शर्करा स्तर नापा जा सके। यदि परीक्षण में शर्करा स्तर बढ़ा हुआ न निकले तो संकेत मिलता है कि शरीर दुग्धशर्करा युक्त पेय का न पूरी तरह पाचन कर पा रहा है और न अवशोषण।

स्टूल एसिडिटी टेस्ट

शिशुओं और बच्चों के लिए ऐसा परीक्षण करवाना जरूरी है क्योंकि वे अन्य परीक्षण करवाने योग्य नहीं होते। इस परीक्षण में मल का नमूना लेकर पचने में अक्षम खमीरीकृत दुग्धशर्करा से बने लैक्टिक तथा अन्य अम्लों का संज्ञान संभव होता है।

स्वयं क्या किया जा सकता है?

अनुकूल आहार का चयन करें

वैसे अभी तक ऐसी कोई औषधि नहीं जो व्यक्ति के लैक्टेज उत्पादन को बढ़ा सके किंतु वह स्वयं दुग्धशर्करा असह्यता की तकलीफ को निम्न उपाय अपनाकर कम करने में सक्षम है:

- बहुत अधिक मात्रा में दूध या दूध से बने उत्पादों को लेने से बचें
- दूध और आइसक्रीम लेते समय ऐसे प्रकार चुनें जिनमें दुग्धशर्करा कम हो
- दैनंदिन भोजन में दुग्ध उत्पादों की मात्रा कम रखें

कुछ समय तक अपने आहार और शरीर की प्रतिक्रिया पर नज़र रखने से व्यक्ति यह समझ पाने में सक्षम हो जाता है कि उसे दुग्धशर्करा की कितनी मात्रा ग्रहण करनी चाहिए ताकि वह उससे होने वाली तकलीफ से बच सके। कई लोगों में तो इतनी गंभीर दुग्धशर्करा असह्यता होती है कि उन्हें सभी दुग्ध उत्पाद छोड़ने पड़ते हैं साथ ही नौबत यहां तक पहुंच जाती है कि वे गैर डेयरी उत्पादों या ऐसी औषधियों को लेने में भी जिनमें दुग्धशर्करा हो, घबराते हैं।

आहार में डेयरी उत्पाद कम लें

बहुत से लोग, दुग्धशर्करा असह्यताग्रस्त होने पर भी कुछ दुग्ध उत्पाद आराम से ले पाते हैं। ऐसे व्यक्ति कम वसायुक्त दूध जैसे स्किम्ड मिल्क लेने से राहत महसूस करते हैं, बजाय मलाई युक्त दूध के उत्पादों के। कई बार धीरे-धीरे दुग्ध उत्पादों की मात्रा बढ़ाने से भी कोई नुकसान नहीं पहुंचता।

कुछ ऐसे तरीके हैं जिनसे दुग्धशर्करा असह्यता से होने वाली तकलीफों को कम किया जा सकता है, जैसे कि –

दुग्ध उत्पादों की मात्रा एक बार में कम रखें

एक बार में दूध कम मात्रा में – 120मिली. ही लें। जितनी कम आहार की मात्रा होगी उतनी ही कम आंत्र संबंधी परेशानियां भी होंगी।

दूध मुख्य भोजन के साथ ही लें

अन्य भोज्य पदार्थों के साथ दूध पिएं। ऐसा करने से पाचन प्रक्रिया मंद होती है और दुग्धशर्करा असह्यता के रोग लक्षण भी कम हो सकते हैं।

स्वयं के लिए उपयुक्त डेयरी उत्पाद छांटें

सभी डेयरी उत्पादों में लैक्टोस की समान मात्रा नहीं होती (तालिका–1)। उदाहरण के लिए सख्त किस्म की चीज़ जैसे स्विस या शेडर में दुग्धशर्करा कम मात्रा में होती है और आमतौर पर उनसे इस प्रकार के रोगलक्षण नहीं उभरते।

प्रसंस्कृत दुग्ध उत्पाद भी इस प्रकार की असह्यता में लिए जा सकते हैं जैसे कि दही क्योंकि दूध को परिष्कृत करने की प्रक्रिया में जिन जीवाणुओं का उपयोग किया जाता है वे सहज रूप से एंजाइम बीटा-गैलेक्टोसिडेस उत्पन्न करते हैं जिससे दुग्धशर्करा का विच्छेद हो जाता है।

वैसे, दही का पाचन भी सभी लोग एकसमान रूप से नहीं कर पाते। घर का तैयार दही सर्वोत्तम होता है क्योंकि उसमें दुग्धशर्करा का स्तर बहुत कम होता है। बाज़ार में मिलने वाले दही और छाछ में कभी-कभार क्रीम या दूध मिलाकर उसे स्वादिष्ट बनाया जाता है और ज़रूरी नहीं कि उसमें दुग्धशर्करा स्तर कम हो।

तालिका–1: निम्न दुग्धशर्करा स्तर के खाद्य पदार्थों का चयन

डेयरी उत्पादों में दुग्धशर्करा की मात्रा		
	मात्रा	दुग्धशर्करा की मात्रा
मलाईयुक्त संपूर्ण दूध	250मि.ली.	11 ग्राम
2 प्रतिशत दूध	250मि.ली.	9–13 ग्राम
स्किम्ड दूध	250मि.ली.	11–14 ग्राम
शर्करायुक्त कॅडेंसड दूध	250मि.ली.	35 ग्राम
छाछ	250मि.ली.	9–11 ग्राम
कम वसायुक्त बाज़ार का दही	250मि.ली.	11–15 ग्राम
हल्की क्रीम	1 चम्मच या 15 मि.ली.	0.6 ग्राम
फैंटी हुई क्रीम टॉपिंग	1 चम्मच	0.4 ग्राम
मक्खन	1 चम्मच	0.15 ग्राम
कॉटेज़ चीज़		5–6 ग्राम
पुनर्गठित सूखा दूध	250मि.ली.	48 ग्राम

तैयार भोजन जिसमें दुग्धशर्करा की मात्रा अधिक होती है

- मिठाईयां
- कैरेमलस और कोटेड टॉफियां
- केक एवं स्वीट रोल
- चीज़ स्प्रेड, पार्टी डिप्स, सॉर क्रीम, व्हाइट सॉस
- पुडिंग एवं फज़
- शिशु आहार
- दूध, क्रीम, दूध के पाउडर, ठोस दूध, दुग्धशर्करा एवं गैलेक्टोज युक्त सभी भोज्य पदार्थ।

भोज्य पदार्थ जिनमें दुग्धशर्करा मात्रा कम होती है (<1 ग्राम/100 ग्राम)

- सुखाए गए सूप
- फ्रैंच फ्राइज़
- कॉर्न अनाज
- डिब्बा बंद या फ्रोजन फल एवं सब्जियां
- कुकीज़ या कुकी सैंडविच फिलिंग्स
- इनस्टैंट कॉफ़ी
- तुरंत लिए जा सकने वाले इनस्टैंट आहार एवं ऐसे ही आलू
- सलाद की ड्रैसिंग
- भरावन वाले गोश्त उत्पाद
- पाइ क्रस्ट एवं फिलिंग्स
- तरल एंटिबायोटिक, विटामिन एवं खनिज मिश्रण
- कॉर्डियल एवं शराब

प्रोबायोटिक्स को आजमाएं

प्रोबायोटिक्स आंतों में विद्यमान प्राणवान जीव हैं जिनसे पाचनतंत्र नीरोगी बना रहता है।

प्रोबायोटिक्स आज बाज़ार में कुछ दही के प्रकारों एवं कैप्सूल रूप के सप्लीमेंट्स के रूप में उपलब्ध हैं और आंतों के प्रोबायोटिक्स की तरह ही सक्रिय और जीवंत माने जाते हैं। इन्हें कई बार आंत्र संबंधी स्थितियों में प्रयुक्त किया जाता है; जैसे कि डायरिया एवं इरिटेबल बाउल सिंड्रोम में। इन्हें लेने पर लैक्टोस के पाचन में भी मदद मिलनी संभव है। अन्य उपायों से राहत न मिलने पर इन्हें आजमाया जा सकता है।

पौष्टिक आहार अपनाएं

पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम लें

डेयरी उत्पादों का कम मात्रा में सेवन किए जाने का मतलब कतई यह नहीं है कि व्यक्ति को पर्याप्त कैल्शियम न मिले। कैल्शियम कई अन्य खाद्य पदार्थों से भी प्राप्त होता है, जैसे कि:

• दूध के विकल्प – सोयाबीन का दूध या चावल का मांड • कैल्शियमयुक्त ब्रेड एवं जूस • पालक • ब्रोकोली • संतरा • रूबार्ब (रेबंद चीनी) • शरीफ़ा • डिब्बाबंद साल्मन

पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'डी' लें

खास ध्यान रखें कि विटामिन डी पर्याप्त मात्रा में मिल सके क्योंकि दुग्धर्शकरा असहिष्णुताग्रस्त लोगों को वह अपने मूलस्रोत जैसे दूध से नहीं मिल पाता।

अंडे, लिवर एवं दही में भी विटामिन डी होता है और व्यक्ति का शरीर धूप में रहने पर स्वयं विटामिन डी का उत्पादन भी करता है।

(अनुवादक: कुंकुम जोशी) ■

प्रविष्टियों हेतु आमंत्रण

छठवाँ राष्ट्रीय विज्ञान फिल्मोत्सव एवं प्रतियोगिता

6th National Science Film Festival & Competition

9 से 13 फरवरी 2016

स्थान: नेहरू विज्ञान केन्द्र, मुंबई

विज्ञान, प्रौद्योगिकी, पर्यावरण एवं स्वास्थ्य विषयों पर फिल्में आमंत्रित हैं

₹1 लाख तक के गोल्डन, सिल्वर और ब्रॉन्ज़ बीवर अवॉर्ड्स

फिल्मों की श्रेणियाँ

ए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों/मीडिया चैनलों द्वारा निर्मित फिल्में

बी व्यक्ति/स्वतंत्र फिल्म निर्माताओं द्वारा निर्मित फिल्में

सी किसी विषय में डिग्री/डिप्लोमा स्तर के पाठ्यक्रमों की पढ़ाई कर रहे विद्यार्थियों द्वारा निर्मित फिल्में

डी कक्षा VI से XII में पढ़ाई कर रहे छात्रों द्वारा निर्मित फिल्में

ई विदेशी/अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के सहयोग से और/या अन्य देशों के प्रोडक्शन केन्द्रों द्वारा निर्मित विज्ञान फिल्में

तकनीकी उत्कृष्टता हेतु अवॉर्ड्स

- ग्राफिक्स/एनीमेशन/स्पेशल इफेक्ट्स
- साउंड रिकॉर्डिंग और डिज़ाइन
- सिनेमैटोग्राफी
- एडिटिंग

स्पेशल ज्यूरी अवॉर्ड्स

- वैज्ञानिक प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाली फिल्म
- नवसृजन पर फिल्म

प्रविष्टियों को जमा करने की अंतिम तिथि : 30 नवंबर, 2015

अधिक जानकारी और ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन के लिए कृपया देखें: www.vigyanprasar.gov.in

विज्ञान प्रसार,
विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के अन्तर्गत एक स्वायत्तशासी संस्था
ए-50, सैक्टर-62, नोएडा - 201 309 (उ.प्र.)
फोन: +91 120 240 4430, 240 4435, ईमेल: nsff2016@gmail.com

राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार,
33, ब्लॉक जी.एन., सैक्टर V,
विधान नगर, कोलकाता, पश्चिम बंगाल - 700 091

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

बिमान बसु
ई-मेल: bimanbasu@gmail.com

क्या ब्रह्मांड मृत्युन्मुख है?

13.8 अरब वर्ष पूर्व तथाकथित महा-विस्फोट की घटना के बाद से ही ब्रह्मांड प्रसरणशील है। जब ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ था तो इसकी ऊर्जा का एक भाग द्रव्यमान के रूप में बद्ध हो गया था। यद्यपि ब्रह्मांड की अधिकांश ऊर्जा तो महा-विस्फोट के कारण ही उत्पन्न हुई थी, अतिरिक्त ऊर्जा अभी भी तारों द्वारा हाइड्रोजन और हीलियम जैसे तत्वों के संलयन से जनित की जा रही है। जब तारे चमकते हैं तो वे परिबद्ध द्रव्यमान को वापस ऊर्जा के रूप में परिवर्तित कर रहे होते हैं। ऐसा वे अल्बर्ट आइंस्टाइन की प्रसिद्ध समीकरण $E=mc^2$ के अनुसार करते हैं। ब्रह्मांड निर्मित करने वाली अरबों मंदाकिनियों के खरबों तारों द्वारा सृजित इस ऊर्जा से ही ब्रह्मांड का कार्य-व्यवहार चलता रहता है।

तथापि, खगोलज्ञों के एक अंतर्राष्ट्रीय दल द्वारा हाल ही के एक अध्ययन में, जिसमें उन्होंने 200,000 से अधिक मंदाकिनियों में जनित ऊर्जा का मापन किया, यह दर्शाया गया है कि ऊर्जा उत्पादन की दर धीरे-धीरे कम हो रही है। खगोलज्ञों के अनुसार, जितनी ऊर्जा ब्रह्मांड में 2 अरब वर्ष पहले उत्पन्न हो रही थी अभी उसकी आधी रह गई है और धीरे-धीरे एक संतुलन अवस्था ग्रहण करने की ओर प्रवृत्त है। इस अध्ययन में खगोलज्ञों की दशकों पुरानी उस शंका का कि असंख्य मंदाकिनियों में विद्यमान तारे धीरे-धीरे ऊर्जा उत्पादित कर स्वयं समाप्त होते जा रहे हैं, पुष्टि हुई है।

इस अध्ययन में चिली की पैरानल वेधशाला में स्थित यूरोपियन सदर्न आब्जर्वेटरी के VISTA तथा VST सर्वेक्षण टेलीस्कोपों सहित, विश्व के अनेक सर्वाधिक शक्तिशाली टेलीस्कोप शामिल थे। इसका समर्थन करने वाले प्रेक्षण, नासा द्वारा प्रचालित दो परिक्रमाकारी टेलीस्कोपों (GALEX एवं WISE) तथा एक अन्य यूरोपियन स्पेस एजेंसी के टेलीस्कोप (हर्शेल) द्वारा भी लिए गए। इस दल ने 21 भिन्न तरंगदैर्घ्यों पर ऊर्जा निर्गम का प्रेक्षण किया और पाया कि सभी तरंगों के संगत ऊर्जा कम हो रही थी, इससे इनके ये परिणाम, निकटवर्ती ब्रह्मांड के ऊर्जा निर्गम संबंधी अभी तक के सर्वाधिक व्यापक आकलन हैं। यह अध्ययन, मिल-जुल कर किए गए सबसे बड़े बहु-तरंगदैर्घ्य सर्वेक्षण गैलेक्सी एंड मास असेम्बली (GAMA) परियोजना का अंग था। दल ने इस कार्य की प्रस्तुति होनोलुलु, हवाई में, 10 अगस्त, 2015 को अंतर्राष्ट्रीय खगोलज्ञ संघ की 29वीं सामान्य सभा में की।

किंतु कुछ विशेषज्ञों की राय है कि प्रेक्षण केवल यह बताते हैं कि ब्रह्मांड की आभा मंद पड़ रही है, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यह मृत्युन्मुख है। उनके अनुसार यदि ब्रह्मांड मृत्यु की ओर उन्मुख भी है तब भी अंत इतना दूर है कि मनुष्य को उसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में एक वैज्ञानिक ने दावा किया है कि ब्रह्मांड को बेकार होने में कम से कम 100 अरब वर्ष लगेंगे जबकि इसको अस्तित्त्व में आए अभी तक केवल 13.8 अरब वर्ष ही हुए हैं। यहां यह याद रखने की बात है कि 5 अरब वर्ष में सूर्य विस्तरित होकर पृथ्वी को निगल लेगा और 10 अरब वर्ष में हमारी मंदाकिनी एंड्रोमेडा में विलीन हो जाएगी।

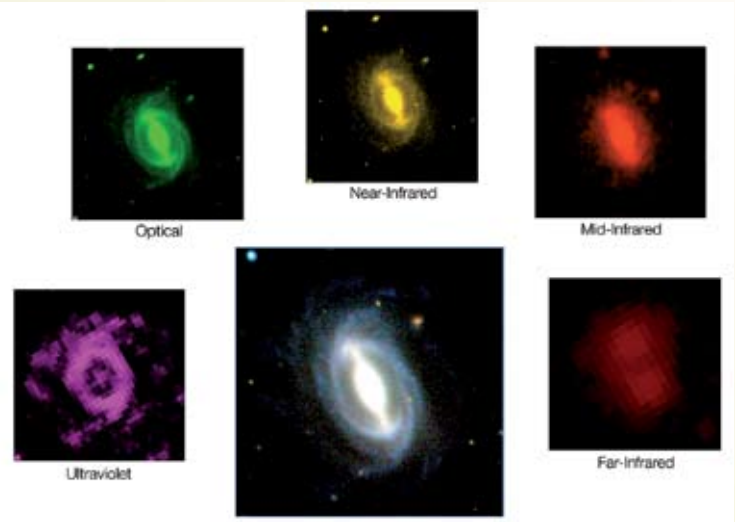

यह सम्मिश्रित चित्र दर्शाता है कि गामा (GAMA) सर्वेक्षण में एक प्रारूपिक मंदाकिनी विभिन्न तरंगदैर्घ्यों पर कैसी दिखाई पड़ती है (साभारः ICRAR/GAMA एवं ESO)।

आइ एस एस अंतरिक्षयात्रियों ने पहला अंतरिक्ष में उगाया गया खाद्य पदार्थ खाया

अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (आइ एस एस) में सवार तीन अंतरिक्षयात्रियों ने पहली बार अंतरिक्ष-आहार का स्वाद लिया और अंतरिक्ष में उगाए गए आहार का सेवन करने वाले पहले मानव बन गए। उन्होंने अगस्त में 400कि.मी. ऊंचाई की कक्षा में विद्यमान आइ एस एस से एक जीवंत वेब-प्रसारण के दौरान 'रेड रोमैन' खून जैसे लाल रंग के लेट्टयूस सलाद की ताजी कटी पत्तियों का रसास्वादन किया (http://www.nasa.gov)।

अंतरिक्षयात्रियों में एक, स्कॉट केली, 5 महीने से एक वर्ष की अभियान-योजना के तहत आइ एस एस पर हैं। इस प्रसन्नचित्त तिकड़ी ने उत्पाद का कुछ भाग बाद में अपने स्टेशन के तीन रूसी सहयोगियों के लिए उपभोग हेतु बचा कर रखा। एक अन्य भाग को पृथ्वी पर वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए लाए जाने के लिए पैक करके और ठंडा करके रख लिया गया है। दो रूसी अंतरिक्षयात्रियों ने लेट्टयूस स्वाद परीक्षण के साथ-साथ अंतरिक्ष-विचरण भी किया।

यह वनस्पति आइ एस एस के यू एस प्रखंड के सिरे पर स्थित यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी की कोलंबस प्रयोगशाला में बनी 'वेजी' पादप वृद्धि प्रणाली के अंदर अत्यंत सूक्ष्म गुरुत्व वातावरण में, बिना मृदा के एक नवाचारी और नवोन्मेषी तरीके से उगाई गई थी। लक्ष्य सब्जियों और अन्य पौधों को उगाने, उनको प्राप्त करने और अंतरिक्ष में अंतरिक्षयात्रियों को खिला कर देखने के लिए हार्डवेयर की जांच करना था। नासा के अनुसार, यह छोटी-बड़ी की जा सकने वाली इकाई अनेक लाल, नीली और हरी एल ई डी (LED) का उपयोग करती है "जो ऊष्मा के रूप में ऊर्जा को लगभग बिल्कुल व्यर्थ नहीं करती, बल्कि इसका परिवर्तनीय प्रकाश-निर्गम विशिष्ट पादप प्रजातियों की विशिष्ट वृद्धि अवस्थाओं के अनुरूप अनुकूलित हो जाता है। कुल मिलाकर यह पारंपरिक पादप प्रकाश-व्यवस्था की अपेक्षा लगभग 60 प्रतिशत कम ऊर्जा का उपयोग करती है।"

काटने से पहले पौधों को 33 दिन तक बढ़ने दिया गया था। बीजों को स्टेशन पर, 15 महीने तक, सुप्तावस्था में स्टोर करके रखा गया था, तब से जब से वेजी को रोमैन बीजों के दो थैलों तथा जिन्निया के एक थैले के साथ, स्पेस-एक्स द्वारा अप्रैल 2014 में अपने तीसरे आपूर्ति मिशन के रूप में इस स्टेशन पर पहुंचाया गया था। अंतरिक्षयात्रियों में से एक ने लेट्टयूस के कुल उत्पाद के लगभग आधे भाग को सावधानी से और विधिपूर्वक काटा, जो वेजी के अंदर सावधानीपूर्वक अनुकूलित दशाओं में काफी बड़ा हो गया था और यह सब नासा के टी वी पर सीधा

रेड रोमैन लेट्टयूस की पत्तियां जो पूरी तरह अंतरिक्ष की भारविहीन दशा में उगाई गई हैं (साभारः नासा)।

दर्शाया गया था।

तथापि, यह पहली बार नहीं था कि किसी अंतरिक्ष स्टेशन पर खाद्य पदार्थ उगाए गए हों। दशकों से नासा तथा अन्य अंतरिक्ष एजेंसियां अंतरिक्ष में पौधों पर प्रयोग करते आ रहे थे, किंतु, उत्पादों को जांच के लिए पृथ्वी पर भेजा जाता था न कि उन्हें खाया जाता था। ऐसा पहली बार हुआ था कि किन्हीं अंतरिक्षयात्रियों को आधिकारिक रूप से, अपने परिश्रम के फल चखने की अनुमति मिली थी। खाने योग्य अंतरिक्ष-खाद्य-पदार्थों को उगाना, गहन अंतरिक्ष मानवीय अनुसंधान क्षमता प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण, नए मील के पत्थर का द्योतक है। नासा का कहना है कि, ''लंबे अंतरिक्ष अभियानों के लिए, किसी भी जीवन-सहायक-तंत्र के पौधे अभिन्न अंग होंगे। ये न केवल आहार और ऑक्सीजन प्रदान करेंगे, अपशिष्ट संसाधन में भी सहायक होंगे। आगे और महत्वपूर्ण प्रगति आवश्यक होगी और वहां का ऐसा प्रत्येक चरण यहां पृथ्वी पर भी नए नवाचार की संभावना जगाएगा।'' इस प्रकार के प्रयोग, 2030 के दशक में नासा की मानव को ''मंगल ग्रह की यात्रा'' पर भेजने की योजना के लिए परम महत्व के हैं। मंगल तक जाने और वापस लौटने की यात्रा में 2 वर्ष से अधिक समय लगने की संभावना है और किसी भी प्रकार की पुनर्पूर्ति संभव नहीं है।

जैसे-जैसे नासा सौरमंडल में अधिकाधिक दूरी के दीर्घ-कालिक अन्वेषण अभियानों की ओर बढ़ेगा, 'वेजी' यात्रियों की भोजन उगाने और खाने की व्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन होगा। यात्रियों को अपने भोजन का कम से कम एक भाग तो उगाना ही होगा और आइ एस एस प्रयोग, एक प्रकार से, लाल ग्रह की ओर मानव की कूच का पथ निर्माण करने में सहायता तो करता ही है। इसे गहन अंतरिक्ष अभियानों के दौरान अंतरिक्षयात्रियों द्वारा मनोरंजक क्रियाकलापों के रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है।

अंतरिक्ष में त्वचा पतली हो जाती है

हाल ही के अध्ययनों ने दर्शाया है कि अंतरिक्ष में अंतरिक्षयात्रियों की त्वचा 20 प्रतिशत तक पतली हो जाती है। यह तो पहले से ज्ञात रहा है कि लंबे समय तक सूक्ष्म गुरुत्व पर्यावरण (शून्य गुरुत्व) में रहने से मानव शरीर में कई प्रकार के दैहिक परिवर्तन हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, पेशियों की क्षीणता, क्योंकि, वहां उनको पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के विरुद्ध शरीर के भार को संभालने की आवश्यकता नहीं रह जाती, चाहे वे शून्य गुरुत्व में नित्य व्यायाम क्यों न करें। शून्य गुरुत्व में, सिर में विद्यमान तरल पर, पृथ्वी की भांति, नीचे की ओर खिंचाव नहीं पड़ता। यह नेत्र गोलकों पर दबाव निर्मित कर सकता है जिससे दृष्टि की समस्याएं हो सकती हैं। हड्डियों का घनत्व कम हो जाता है – प्रत्येक मास इसमें लगभग 1-2 प्रतिशत की कमी आ जाती है। अंतरिक्ष में पांच मास रहने के बाद लौटे, आइ एस एस के अंतरिक्षयात्रियों को सामान्य होने में कई महीने लग जाते हैं। किंतु, मानव त्वचा पर शून्य-गुरुत्व का प्रभाव पहले ज्ञात नहीं था।

मानव त्वचा की अनुप्रस्थ काट का चित्र जिसमें अंतः त्वचा (नीचे) बाह्य त्वचा (सबसे ऊपर) तथा कोलेजैन संयोजी ऊतक दर्शाए गए हैं।

गत वर्षों में, अंतरिक्ष में लंबे समय तक रह कर लौटे अनेक अंतरिक्षयात्रियों को त्वचा की शुष्कता और खुजली जैसी त्वचा की समस्याएं रहती थीं जिससे उनकी त्वचा पर आसानी से खरोंचें पड़ जाती थीं और जलन होती थी। इसका कारण जानने के लिए नासा और यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी ने जर्मनी के सार्लैंड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर कॉर्स्टन कोयनिंग से संपर्क किया और उनसे अपनी ''स्किन-बी'' परियोजना में सहायता करने का अनुरोध किया, जिसका लक्ष्य त्वचा पर समय के प्रभाव को समझना था, जो पृथ्वी पर धीमा रहता है, पर, अंतरिक्ष में बहुत बढ़ जाता है।

अध्ययन के लिए कोयनिंग के दल द्वारा विकसित की गई प्रौद्योगिकी में टोमोग्राफी नामक तकनीक के माध्यम से त्वचा के विभिन्न भागों के उच्च विभेदन प्रतिबिंब प्राप्त करने के लिए एक फेम्टोसेकंड (10^{-15} सेकंड) लेसर स्पंदनों का उपयोग किया गया। सिग्नलों का उपयोग करके फिर से प्रतिबिंब निर्मित किए गए और उच्च विभेदन के साथ त्वचा का परिशुद्ध अवलोकन किया गया। यह लेसर तकनीक देखती है कि त्वचा द्वारा प्रकाश किस प्रकार अवशोषित और परावर्तित होता है और बाह्य त्वचा के नीचे अंतः त्वचीय तथा अवत्वचीय पेशियों के अंदर बिना किसी शल्य-चिकित्सीय हस्तक्षेप के अध्ययन संभव बनाती है।

दल ने तीन अंतरिक्षयात्रियों – दो इटैलियाई और एक जर्मन – का अध्ययन किया, जिन्होंने 199 दिन अंतरिक्ष में गुजारे थे। प्रत्येक अंतरिक्षयात्री ने अंतरिक्ष यात्रा पर रवाना होने से ठीक पहले और लौटने के तुरंत बाद अपनी पूरी त्वचा स्कैन करवाई। अध्ययन के निष्कर्ष बहुत ही रोचक थे। एक ओर तो यह पाया गया कि कोलेजैन का उत्पादन अधिक हुआ, इसलिए इन अंतरिक्षयात्रियों की अंतः त्वचा (त्वचा की निचली परत) में अचानक अधिक कोलेजैन आ गया, जिसे वृद्धतारोधी प्रभाव कहा जा सकता है। दूसरी ओर बाह्यत्वचा (त्वचा की सबसे बाहर की परत) की कोशिकाएं सिकुड़ गईं जो कि वृद्धता का सामान्य चिह्न है और जिसके कारण त्वचा ढ़ीली व पतली हो जाती है, अपना लचीलापन खो देती है और इस पर बुढ़ापे की सूचक झुर्रियां पड़ जाती हैं। अंतरिक्षयात्रियों की त्वचा में ये दो परिवर्तन, प्रारूपिक वयवृद्धि प्रक्रम की दृष्टि से विचार करें तो एक दूसरे को निरस्त करते हुए प्रतीत होते हैं किंतु अभी अन्वेषक यह नहीं जानते कि अंतरिक्षयात्रियों की बढ़ती उम्र के संदर्भ में इसका क्या तात्पर्य है (http://nasaresearch.nasa.gov)। कोयनिज के अनुसार, ''अभी तक हमारे पास इसकी कोई व्याख्या नहीं है, और हम इस बात की प्रतीक्षा में हैं कि अन्य अंतरिक्षयात्री यह पता लगाएं कि हो क्या रहा है, और संभव हो तो यह भी जानने की कोशिश करें कि बचाव कैसे हो, कैसे हम मदद करें कि बाह्य त्वचा में यह संकुचन न हो।''

नासा के वैज्ञानिक इस मत के हैं कि यह अनुसंधान व्यापक रूप में (इसी तरह के) अन्य देह-ऊतकों में जरा वृद्धि प्रक्रमों के संबंध में अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा। इससे उन भावी चंद्रमा और मंगल (उदाहरणार्थ) के अभियानों में अंतरिक्षयात्रियों पर जरा-प्रक्रमों के प्रभावों को ज्ञात करने में मदद मिलेगी जहां पर्यावरणीय दशाएं बहुत चुनौतीपूर्ण हैं।

चार पैरों वाले सर्प के जीवाश्म मिले

आज सर्प उल्लेखनीय रूप से विविधतापूर्ण और सफल प्राणी-समूह हैं, किंतु उनका विकासवादी मूल अज्ञात रहा है। दो पैरों वाले सर्पों की खोज ने छिपकलियों के सांपों में परिवर्तन पर प्रकाश डाला था। किंतु चार हाथ-पैरों वाले सर्पों का कोई वर्णन अभी तक नहीं पाया गया था। अभी तक का पहला चार टांग वाले सर्प का जीवाश्म वैज्ञानिकों को छिपकलियों के सर्पों में बदलने के विकासवादी प्रक्रम पर पुनर्विचार के लिए बाध्य कर रहा है। ब्राजील में पाया गया और आकलन के अनुसार 11.3 करोड़ वर्ष पुराना यह सर्प जीवाश्म, अभी तक का सबसे पुराना ऐसा जीवाश्म है और लगभग आधुनिक सर्प के जैसा ही दिखाई पड़ता है, केवल एक सुस्पष्ट अंतर है, इसके चार हाथ-पैर हैं जिनमें प्रत्येक में पांच-पांच उंगलियां हैं, ऐसा एक अभिनव अध्ययन में बताया गया है। इस जीवाश्म रूप सर्प को टेट्रापोडोफिसएम्प्लेक्टस (शब्दशः चार पैरों वाला सर्प) नाम दिया गया है। यू.के. के पोर्ट्समाउथ विश्वविद्यालय के डेविड एम. मार्टिल, जिन्होंने इस अनुसंधान का नेतृत्व किया था, के अनुसार, यद्यपि इसकी चार टांगें हैं, टी. एम्प्लेक्टस में ऐसे अनेक लक्षण विद्यमान हैं जो स्पष्टतः इसे सर्प की श्रेणी में ला देते हैं। क्रमशः 4 मि.मी. तथा 7मि.मी. लंबी इसकी टांगें वास्तव में बहुत छोटी हैं। यह प्राणी संभवतः उनका उपयोग चलने के लिए नहीं करता होगा, शायद शिकार को पकड़ने के लिए अथवा बिल के लिए जमीन खोदने के लिए इनका उपयोग करता होगा। वैज्ञानिकों के अनुसार टी. एम्प्लेक्टस सर्पों और छिपकलियों के बीच की खोई कड़ी हो सकती है (science, 24 जुलाई 2015। doi:10.1126/साइंस,aaa.9208)।

वैज्ञानिकों में लंबे समय से यह बहस चलती आ रही है कि सर्प स्थलीय जीवों से विकसित हुए हैं या समुद्री जीवों से। टेट्रापोडोफिस में सागरी जीवन के अनुकूलन, जैसे तैरने के लिए उपयोगी पुच्छ का अभाव है। किंतु, इसकी खोपड़ी और शरीर का अनुपात बिल बनाने के अनुकूलन के साथ संगतिपूर्ण हैं। अनुसंधान दल के एक सदस्य, यू.के. के बाथ विश्वविद्यालय के निकोलस आर. लोंगरिच का कहना है कि इस अनुसंधान के निष्कर्ष असंदिग्ध रूप से यह दर्शाते हैं कि सर्पों का उद्भव दक्षिणी गोलार्ध में हुआ और वे स्थल-मूल के हैं। इस 20से. मी. लंबे जीवाश्म की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता इसके कंकाल की आपेक्षिक लंबाई है। टी. एम्प्लेक्टस में 272 कशेरुकाएं हैं, जिनमें से 160 इसके मुख्य शरीर में हैं, न कि पूंछ में। यह संख्या उस सीमा से दोगुनी से अधिक है जो अन्वेषक मानते थे कि अनुकूलन में हाथ-पैरों को खोना शुरू करने से पहले लंबे किस्म के शरीरों में होनी चाहिए थी।

टेट्रापोडोफिस एम्प्लेक्टस, 'चार टांग का लिपटने वाला सर्प'। (अंतर्विष्ट चित्र) पांच उंगलियों वाले पैरों का निकट-चित्र (साभारः दवे मार्टिल/पोर्ट्समाउथ विश्वविद्यालय)।

अन्वेषकों द्वारा पाए गए अनेक संकेत यह दर्शाते हैं कि यह जीवाश्म संक्रमण अवस्था के किसी सर्प का है। छिपकलियों और मगरमच्छों के विपरीत टेट्रापोडोफिस में उदर शल्कों की एकल पंक्ति की एक धुंधली सी निशानी है जो सर्पों में आज भी दिखाई पड़ने वाला उनका पहचान चिह्न है। (उदर शल्क उदर पर नीचे की ओर स्थित बड़े-बड़े दीर्घवृत्ताकार शल्क हैं जो सर्पों द्वारा गति के लिए तथा पेड़ों पर चढ़ते समय शाखाओं पर पकड़ बनाते समय उपयोग में लाए जाते हैं।) जीवाश्म में सर्पों के अन्य चिरसम्मत अभिलक्षण भी पाए गए हैं जिनमें शामिल हैं: छोटी थूथन, लंबा मस्तिष्क कोटर, शिकार को निकुंचित करने की क्षमता युक्त लंबायमान और नम्य मेरुदंड, मूलयुक्त दांत और नम्य जबड़ा जो बड़े शिकार को भी निगलने में सहायक है; यहां तक कि अन्वेषकों ने सर्पों जैसे शल्क भी पाए हैं। मार्टिल के अनुसार, दो टांग वाले सर्प के जीवाश्म विद्यमान हैं यह तो ज्ञात था किंतु यह पहला सर्प पूर्वज है जिसकी चार टांगें हैं। उनका कहना है कि इनका विकास संभवतः बिल खोदने वाले स्थलीय जीवों से हुआ होगा और यह प्राचीन छिपकलियों से आधुनिक सर्पों में विकास के संक्रमण-काल का प्राणी था।

टेट्रापोडोफिस का इतिहास में सुस्पष्ट स्थान निर्धारित करने की कोशिश में दल ने सभी जीवित और प्राचीन सर्पों के साथ-साथ कुछ संबद्ध सरिसृपों की शारीरिक और जीनीय संरचना के संबंध में ज्ञात सभी जानकारियों का उपयोग करते हुए एक वंश-वृक्ष तैयार किया। इस विश्लेषण ने टी. एम्प्लेक्टस को उसी वृक्ष की एक शाखा – प्राचीनतम शाखा – पर रखा जिससे आधुनिक सर्पों का उद्भव हुआ। यह शोध दर्शाता है कि सभी सर्पों का पूर्वज एक स्थलीय प्राणी था, जो अंशतः भूमि के अंदर रहता था।

(अनुवादकः रामशरण दास) ■

चावल की आर्गेनिक खेती *(पृष्ठ 12 का शेषांश)*

निष्कर्ष

यदि हम कृषि का मूल्यांकन तकनीक के आधार पर करें तो यह जान पाएंगे कि परंपरागत तरीका प्रकृति को अपनी इच्छानुसार चलाने और इसे आवश्यकतानुसार संशोधित कर लेने का है। प्रकृति में इस प्रकार की तोड़मरोड़ कर अपना मनचाहा परिणाम प्राप्त कर लेना मानव की अद्भुत क्षमता का सबूत है और इसी के कारण वह दुनिया पर राज कर रहा है। बेशक इसमें कृषि ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन जैसा कि हर तकनीक में होता है, कृषि तकनीक के भी अपने छिपे नुक्सान हैं। कृषि ने न केवल जंगल की भूमि पर अपना कब्ज़ा जमाया जिससे प्राकृतिक असंतुलन हुआ बल्कि कृषि में रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग ने वातावरण को प्रदूषित कर बहुत से बिन बुलाए रोगों को भी जन्म दिया। लेकिन वास्तव में यह तकनीक के नुक्सान नहीं हैं बल्कि मानवीय लालच और तकनीक के विवेकहीन प्रयोग के परिणामों को न समझ पाने के कारण यह हानिकारक रूप में बदल गई है। राहत की बात यह है कि हाल फिलहाल ही लोगों की समझ लौट आई है और वे कृषि के एक ऐसे तरीके की महत्ता समझने की शुरुआत कर रहे हैं जिससे न केवल जरूरतें पूरी हो सकें बल्कि वातावरण में भी स्वच्छता बनी रहे। आर्गेनिक कृषि इस विषय में एक आकर्षक विकल्प है। वर्तमान दशकों में यह न केवल मृदा के स्वास्थ्य, पर्यावरण और समूचे जैवमंडल को बनाए रखने के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है बल्कि हृदय रोगों और डायबिटीज का खतरा कम करने में भी उपयोगी पाया गया है। आर्गेनिक खेती में उत्पादन परम्परागत कृषि की तुलना में कुछ कम हो सकता है लेकिन यदि इसे एक विशिष्ट और मूल्यवर्धित उत्पाद समझा जाए तो अच्छा मूल्य मिलने के कारण किसान आर्गेनिक खेती के लिए प्रेरित होंगे। अभी आर्गेनिक खेती शुरू ही हुई है – अभी इसके सिद्धांतों और तरीकों का विकास हो रहा है। हालांकि यह तकनीक काफी लाभकारी दिखाई दे रही है लेकिन पूरी तरह इसका लाभ उठाने और इसे समझने में अभी कुछ समय लगेगा।

टी. बी. बागची केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक के क्रॉप फिजियोलॉजी एंड बायोकेमिस्ट्री विभाग में वैज्ञानिक हैं तथा एस. राय फसल सुधार प्रभाग में वैज्ञानिक हैं।

(अनुवादकः सोनिया राणा) ■